श्री

ब्रह्मनिष्ठ श्री रामगुरु कृत

पंचीकरण

ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री जयकृष्ण कृत

भाषाटीका सहित

प्राप्तिस्थान

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक-विक्रेता

जैनस्ट्रीट, सैदमिठा बाजार, लाहौर

ब्रह्मनिष्ठ श्रीरामगुरुकृत

पंचीकरण.

तथा

ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्रीजयकृष्णकृत

गुजराती टीका.

जो

प्रकाशक:-वेदधर्म सभा.

मंत्री: विश्वनाथ प्र. वैद्य, बी.ए., एम्.आर.ए.एस.

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा

हिन्दीभाषामें अनुवादित.

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥

तृतीयावृत्ति.

ई० सन १९३४.

मूल्य रु० २.

वामन विश्वनाथ वांवर्डेकरने छापा.

ठे:—इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स, ९० नेसबिट रोड, माझगांव, मुंबई १०.

प्रसिद्ध करनेका ठे०

विश्वनाथ प्रभुराम वैद्य

८८, केथेड्रल स्ट्रीट, भुलेश्वर—मुंबई.

प्रस्तावना.

श्रीरामगुरु का संक्षिप्त चरित्र।

श्रीरामगुरु का जन्म संवत १८४० की साल दक्षिणके हैदराबाद नगरमें एक यजुर्वेदीय महाराष्ट्र ब्राह्मण के घरमें हुआ था। वह जब सोलह वर्ष की अवस्था को पहुंचे तबीसे ब्रह्मचर्य धारण कियाथा। उनमें बोध करनें की अद्भुत शक्ति थी। शरीर का रंग तेजोमय था। वह जहां जहां वास करतेथे वहांके मुमुक्षुओंको "अहं ब्रह्मास्मि" के ज्ञानका उपदेश देकर उनको मोक्षमार्गमें स्थित कराते थे। जिन जिन स्थानोंमें ये रहे उन उन स्थानोंमें महावाक्य का उपदेश करके वेदान्त ज्ञान की स्थापना करते गये। उनकी ब्रह्मनिष्ठा, उपदेशशैली स्वानुभवद्वारा जिज्ञासुओं को समाधान करने आदि गुणों के प्रभाव से उनके प्रसिद्ध अनेक शिष्य हैं। उनमें से भी विशेष प्रसिद्धिको पाने वाले चार शिष्य हैं। जिनमें सुदामापुरीके व्यास श्री जयकृष्ण जी, जामनगरमें विश्वनाथजी, बडोदामें बापूजी और कच्छ मांडवीमें मुखलाल गिरीजी हैं। यह महात्मा संवत १९०६ वि० के भाद्रपद मास शुक्ल तृतीयामें बडोदामें समाधिस्थ हुए।

उन परम प्रतापी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीराम गुरु के प्रसिद्ध शिष्योंमें परमप्रसिद्ध पंडित जयकृष्ण महाराजनें गुरु कृपासे ब्रह्म साक्षात्कार पूर्वक वेदान्त विचारमें अत्यन्त परिश्रम किया है।

इस कृपालु महाराजने अन्य मुमुक्षुओं को भी मोक्षमार्गमें प्रवृत्त करानेके लिये सदा वेदांत की कथा करना अपना नियमकर रखा है। उनके श्रोताओंमें से बहुतों की ऐसी इच्छा हुई कि, श्री रामगुरुकृत पंचीकरणके प्रत्येक वाक्यमें गूढार्थ भरा है, इसलिये यदि इसकी कोई सरल टीका होजाती तो यह साधारण बुद्धिवाले जिज्ञासुओं को परमोपयोगी होता। श्रोताओंकी, आग्रहपूर्वक, उपयुक्त प्रार्थनाको सुनकर, परमार्थ दृष्टि से अत्यंत परिश्रमपूर्वक गुरु शिष्यके सम्वादरूप गुजराती भाषामें यह टीका उक्त पण्डितजीने रची है। इस टीकामें प्रक्रिया को समझाने के लिये व्यवहारिक दृष्टांत दिये गये हैं, जिनसे मुमुक्षु सहजमें विषय को समझ सके; इसलिये यदि दृष्टांतका सर्व अंश सिद्धांत के साथ नहीं मिलता हो तो केवल दृष्टांतको न देखते हुए सिद्धांतको भली प्रकारसे विचार करके ग्रहण करना। इस पंचीकरणको ब्रह्मनिष्ठ वेदान्त वक्ता सद्गुरुके मुखसे श्रवण करके मनन करे तो आत्माका दृढ अपरोक्ष ज्ञान हो कर अवश्य जन्म मरण बंधन छूटे। इसलिये मुमुक्षुओं से विनती है कि, अथसे इति तक इस ग्रंथका भली प्रकारसे विचारकर अपना लाभ संपादन करें इस ग्रंथमें जिन २ विषयोंका निरूपण किया हैं उनका वर्णन अनुक्रमणिका से मालूम होगा।

शा० कल्याणदास नरोत्तमदास।

अनुक्रमणिका.

॥ इति ॥

ॐ

श्रीसद्गुरुभ्यो नमः।

अथ सटीक पंचीकरणप्रारम्भः।

मूलटीकाकारकृत मंगलाचरण।

आर्यावृत्तम्।

वंदे श्रीमद्रामं सद्गुरुमतिशांतिसीतयाऽऽश्लिष्टम् ॥ कामादिराक्षसारिं भवजलधौ तत्त्वबोधसेतुकरम् ॥ १ ॥

टीका ॥ परम शान्ति (निर्विकल्प वृत्ति) रूपी सीतासंयुक्त; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सररूपी राक्षसोंके शत्रु, संसाररूपी समुद्रमें तत्त्वबोधरूपी सेतु-के बांधनेवाले और ब्रह्मविद्यारूपी श्रीसे शोभायमान श्रीरामरूप, श्रीराम सद्गुरुको मैं वन्दन करता हूँ।

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र सीतासे संयुक्त हैं उसी प्रकार श्रीरामनामक सद्गुरु परम शान्ति (निर्विकल्प

समाधि) रूपी सीतासंयुक्त हैं; जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी रावण आदि राक्षसोंके नाश करनेवाले हैं, उसी प्रकार श्रीराम सद्गुरु काम क्रोधादिरूप राक्षसोंके नाश करनेवाले हैं; जिस प्रकार श्रीरामचंद्रने अपनी सेनाको समुद्रसे पार उतारनेके लिये पुल बांधा था उसी प्रकार श्रीराम सद्गुरुने मुमुक्षुओंके संसाररूपी सागरसे पार होनेके लिये तत्त्वबोधरूपी पुल बांधा हैं; जैसे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मीसे शोभायमान हैं उसी प्रकार श्रीरामसद्गुरु ब्रह्मविद्या आदि अनेक सद्गुणोंसे शोभायमान हैं; इस लिये मैं श्रीराम सद्गुरुको साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

गुजराती टीकाकारकी प्रतिज्ञा।

आर्यावृत्तम्।

पंचीकरणव्याख्यां सुखबोधार्थं करोम्यहं सरलाम्॥ संस्कृतवागज्ञानां गुर्जरसद्भाषया मुमुक्षूणाम्॥ २॥

टीका॥ संस्कृत भाषासे अनभिज्ञ हैं; परन्तु संसार सागरसे तरनेकी इच्छा है जिनको, ऐसे विवेकादि साधनसम्पन्न जिज्ञासु जनोंको सहजहीमें पंचीकरणके बोध होनेके लिये श्रीराम सद्गुरुकृत पंचीकरणकी टीका सरल गुजेराती[1] भाषामें करता हूँ।

चार अनुबन्धवर्णन.

अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजनका नाम अनुबन्ध है। ये चार अनुबन्ध जिस ग्रन्थमें होते हैं उसीमें विवेकी पुरुषोंकी प्रवृत्ति होती है। किन्तु इस ग्रन्थमें अधिकारी आदिके अभाव होनेसे इसमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होगी। इसलिये इस ग्रन्थका आरम्भही निष्फल है। यदि ऐसी शंका किसीको उत्पन्न हो तो उसकी निवृत्तिके लिये इसकी दूसरी चौपाईमें—

---

१ गुजराती भाषान्तरकर्ताके मंगलाचरणका अर्थ हिन्दीमें लिखा है इसलिये मूळ श्लोकके अनुसार यहां गुजराती शब्द लिखा है।

[1] अधिकारीलक्षण ।

विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मोक्षेच्छा ऐसे चार साधनसम्पन्नको पंचीकरणका अधिकारी कहाहै ।

उसमें—

विवेकलक्षण ।

आत्मस्वरूप नित्य है उसके अतिरिक्त सर्व अनित्य है ऐसे निश्चयका नाम विवेक है ।

वैराग्यलक्षण ।

इस लोकके तथा परलोकके भोगोंकी इच्छाको त्यागदेनेका नाम वैराग्य है । फिर

शमादि षट्सम्पत्ति है उसमें—

१—सर्व वासनाके त्यागको शम कहते हैं ।

२—शब्दादि सर्व विषयोंसे इन्द्रियोंको रोकनेका नाम दम है ।

३—संसारके सर्व प्रपंचसे निवृत्तिका नाम उपरति है ।

---

१ अविनाशी आतम अचल, जग तातें प्रतिकूल ।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥

४–शीत उष्ण, (शर्दी गर्मी) सुख दुःख, मान अपमान आदि द्वन्द्व धर्मोंको सहन करनेका नाम तितिक्षा है।

५–ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु तथा वेदान्त शास्त्रके वाक्योंमें विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। और

६–चित्तकी एकाग्रताको समाधान कहते हैं।

मुमुक्षुतालक्षण।

संसारबन्धसे मुक्त होनेकी इच्छाको मोक्षेच्छा कहते हैं।

इन्ही चार साधनोसंयुक्त पुरुषको अधिकारी कहते हैं।

विषयवर्णन।

इस ग्रन्थका विषय जीव ब्रह्मकी एकता है। सो इसमें बहुत स्थानोंमे निरूपण किया है।

सम्बन्धवर्णन।

इस ग्रन्थका और ब्रह्मका प्रतिपादक-प्रतिपाद्य-भावरूप सम्बन्ध है। अर्थात् यह ग्रन्थ अद्वितीय

ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाला है। ग्रन्थ, प्रतिपादक है और ब्रह्म प्रतिपाद्य है। (जिसका प्रतिपादन किया जाय उसे प्रतिपाद्य कहते हैं और प्रतिपादन करनेवालेको प्रतिपादक कहते हैं)।

इसी प्रकार ज्ञानका और पंचीकरणका जन्यजनक-भावसम्बन्ध है। अर्थात् ज्ञान जन्य है और पंचीकरण विचारद्वारा ज्ञानका जनक है। (जो उत्पन्न होवे उसे जन्य कहते हैं और जो उत्पन्न करे उसे जनक कहते हैं)

अज्ञान और ज्ञानका निवर्त्यनिवर्तकभावसम्बन्ध है। अर्थात् अज्ञान निवृत्त होता है और ज्ञान उसको निवृत्त करता है। (निवृत्त होनेवालेको निवर्त्य कहते हैं और निवृत्त करनेवालेको निवर्त्तक)। इत्यादि।

प्रयोजन।

इस ग्रन्थका, परमानन्दरूप परमात्माकी प्राप्ति तथा अज्ञानसहित जन्मादि अनर्थकी निवृत्ति, प्रयोजन है।

इस प्रकारसे इस ग्रन्थका प्रारम्भ सफल है।

चौपाई।

श्रीगणेशाय नमः॥ घणा दहाडानो भ्रम थयो जीवने एटले देहमाने पोते आपने॥ ते सारु फरे चौरासी लक्ष योनिने, फरि फरि पामे जन्म मरणने ॥ १ ॥

टिका॥ अविद्योपाधिक प्रत्यक् आत्मा जो जीव, उसको बहुत दिन अर्थात् अनादिकालसे भ्रम हुआ है, इसलिये यह अपने देहकोही अपना स्वरूप समझता है, । यथार्थमें यह (जीवात्मा) आपही सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म है, देह नहीं है। भूलसेही मैं देह हूं; मैं मनुष्य हूं; मैं ब्राह्मण हूं; मैं क्षत्रिय हूं; इत्यादि मानकर यह (जीवात्मा) चौरासी योनिमें भ्रमता हुआ आवागमनके चक्रमें पडा हुआ है। इसके उपर एक दृष्टान्त है।

भ्रमसे विपरीत बुद्धिविषय दृष्टान्त।

एक ब्राह्मण एक बार बहुतसा भांग पीकर

उसके नशामें ऐसा मस्त हुआ कि, अपना ब्राह्मण-पणा भूलकर मैं शूद्र हूँ; मैं वैश्य हूँ; मैं क्षत्रिय हूँ; ऐसे अनेक विपरीत वाक्य बोलने लगा। बोलने तो लगा किन्तु ऐसे बोलनेके समय भी ब्राह्मणत्व छोडकर वह शूद्रादिक हुआ नहीं केवल नशाके कारणसे विपरीत बोलता है। उसके पश्चात् उसका कोई हितचिन्तक मित्र मिला उसने उसकी दशापर दया करके उसका नशा उतारनेके लिये उसे दही अथवा घी पिलाया। घी पितेही उस ब्राह्मणका नशा उतर गया। तब तो वह स्वभावसेही "मैं ब्राह्मण हूँ" ऐसा जानता ही है किन्तु मैं शूद्रादिक हूँ इस बातकी उसे कल्पना भी नहीं होती है। क्योंकि जबतक नशा था तबहीं तक उसकी बुद्धि विपरीत हुई थी नशाके उतरतेही उसकी विपरीत बुद्धिभी जाती रही।

दृष्टान्तका सिद्धान्त।

इसी प्रकारसे आत्मा अपने अज्ञानरूपी नशाके योगसे अविद्याकल्पित स्थूल सूक्ष्म शरीरोंपर कल्पित

सम्बन्ध मानकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके बन्धनमें पड़ता है। अर्थात् मैं मनुष्य हूँ; मैं ब्राह्मण हूँ; मैं क्षत्रिय हूँ; मैं वैश्य हूँ; मैं शूद्र हूँ; मैं गृहस्थ आदि चार आश्रमवाला हूँ; मैं त्यागी हूँ; मैं पुरुष हूँ; मैं स्त्री हूँ; मैं जन्मता हूँ; मैं मरता हूँ; इत्यादि अनन्त विपरीत अध्यास करके कर्मजालमें फसता है। यथार्थमें स्वयम् देहादिकोंका द्रष्टा साक्षी ब्रह्मरूप है। किन्तु अज्ञानसे जानता नहीं है।

जब ऐसे अज्ञानी जीवको ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिले और उसको ब्रह्मविद्याका उपदेशरूपी घी पिलावे तब उसका अज्ञानरूपी नशा दूर होवे। तब वह पुरुष—मैं कर्ता; मैं भोक्ता; मैं मनुष्य; मैं देह; इत्यादि मिथ्या अध्यासको त्याग देगा। और "मैं सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म हूँ" ऐसा मानेगा; किन्तु जबतक ऐसा नहीं जाना है तबतक अनादि कालकी भूलसे "मैं देह हूँ" ऐसा मानेगा।

सिंहको बकरेपनेके अध्यासका दृष्टान्त।

कोई एक गरेड़िया किसी पहाड़की तराईमेंसे एक नवजात सिंहके बच्चेको घर लाया। अब वह सिंहके बच्चेको नित्य दूध पिलाकर पालने लगा। वह सिंहका बच्चा दूध पीकर बड़ा हुआ और बकरियोंके साथ जंगलमें जाकर खेल कूद करता और इधर उधर चलता फिरता पानी पीता और संध्या होनेपर सब बकरियोंके साथ गरेडियेके घर आता। गरेड़िया भी उसे नित्य बकरियोंके साथ वाडेमें बन्दकर देता।

बहुत दिनतक बकरोंके साथ रहनेसे सिंहके बच्चेको ऐसा निश्चय होगया कि, मैं बकरा हूँ. गरेड़िया भी उसे बकराहीके नामसे पुकारता था किसी दिनभी उसने उसे सिंहके नामसे नहीं पुकारा।

इसप्रकार बकरोंके साथ रहनेसे सिंहके बच्चेको अपने बकरा होनेका अध्यास दृढ होगया। पश्चात् एकदिन जब सिंहका बच्चा सब बकरोंके साथ जंगलमें

चर रहाथा उसी समय पर्वतकी ओरसे एक दूसरा सिंह आया। उसने इस सिंहको बकरोंके झुण्ड़में चरता हुआ देखकर आश्चर्यमें आकर बडी गर्जना करी। पहाड़ी सिंहकी गर्जनाको सुनकर सब बकरोंके साथ वह पालतू सिंहभी भागने लगा। उसे भागते देखकर पर्वतके सिंहने उसको पुकारकर कहा—हे मित्र! खड़ा रह. मुझको तुझसे एक बात कहनी है। उस पहाड़ी सिंहकी बातको सुनकर बकरोंका साथी सिंह खड़ा रहा। तब पहाड़ी सिंहने उसके पास आकर कहा—के भाई! तूँ सिंह होकर बकरोंके साथ क्यों रहता है? तब वह बकरोंका साथी सिंह बोला—मैं तो सिंह नहींहूँ तूही सिंह होतो हो, मैं बकरा हूँ; खबरदार जो तूंने मुझसे फिर कभी ऐसी झूठी बात कही है। फिर कभी तूं मुझे सिंह मत कहना!

इस प्रकारसे उसके बिपरीत बचनको सुनकर पहाड़ी सिंहने अपने मनमें विचार किया कि,

जबसे इसने जन्म लिया है तबसे आजतक यह बकरोंके साथ रहा है, और बकरोंका चरानेवाला गरेडियाभी इसे बकराही कहकर पुकारता रहा है, इस कारणसे इसको यह बकरेपनेका मिथ्या अध्यास दृढ हो गया है इस कारण यह अपने स्वरूपको भूला हुआ है। अब मुझे उचित है कि, इसको उपदेशकर इसके मिथ्या अध्यासको मीटा दूँ। इस प्रकारसे वह पहाड़ी सिंह अपने मनमें विचारकर उपरोक्त बकरेपनेके अध्यासवाले सिंहसे बोला कि—“हे भाई! तू विचार करके देख वे बकरे सब छोटे हैं और तू बड़ा है तब भला तू बकरा कैसे होगा?। तब वह अज्ञानी सिंह बोला वे छोटे हुआ करें मैं बड़ा बकरा हूँ। तब पहाड़ी सिंहने कहा भाई। तू एक बार मेरी ओर देख मैं स्वयम् सिंह हूं, मेरा सब लक्षण तेरे साथ मिलता है, किन्तु उन बकरोंका लक्षण एक भी तेरे साथ मिलता नहीं है। क्यों कि, देख बकरेको दो दो खुर है और तेरे तथा मेरे

पगमें पाच पाच नख हैं। इस लिये तू बकरा नहीं है। और भी देख। बकरोंकी छोटी छोटी दुमें हिला करती हैं किन्तु मेरी तेरी दुमें लम्बी हैं। इस लिये भी तू बकरा नहीं है। इसी प्रकारसे जब पहाड़ी सिंहने उक्त अज्ञानी सिंहको बकरेके लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोवाला सिद्धकरके उसे सिंहका स्वरूप दिखा दिया तब भी उसको विश्वास नहीं हुआ और कहने लगा कि, तेरी बात है तो ठीक किन्तु मेरे मनमें बराबर जमती नहीं है। तब उस पहाड़ी सिंहने उसको निकटके किसी कूपके किनारे खड़ा करके पानीमें अपनी परछाईं देखनेको कह कर कहने लगा कि, देख! मेरा और तेरा मुख एकही समान है कि कुछ भेद है? बकरोंका मुख लम्बा है और मेरा तेरा मुख उनके विपरीत गोल है। तेरा गला साफ है और बकरोंके गलेमें दो स्तन हैं। तेरी कमर, बाल, कान तथा शरीरका रंग इत्यादि एक भी बकरोंके साथ नहीं मिलता है और मेरे

साथ बराबर मिलता है। बकरोंके शिरपर सींग है और तेरे शिरपर नहीं है। इस प्रकारसे जब तेरा एक भी लक्षण बकरोंके साथ नहीं मिलता है और मेरा सब लक्षण और स्वरूप तेरे साथ मिलता है। तब तूँ सिंह नहीं है इसका कारण क्या है ?

तब उस अज्ञानी सिंहने कहा कि, यह बात ठीक है परन्तु यदि मैं सिंह हूँ तो बकरा कैसा बना और अपने रूपको कैसे भूल गया ?

पहाड़ी सिंहने कहा कि, तू अपनेको बकरा मानताहै उसका कारण यह है कि, जन्मसे तू बकरोंके साथ रहा है और गरेड़ियाभी तुझे सदा बकरा कहकर पुकारता रहा है। इससे तुझे मिथ्या अभिमान दृढ हो गया है अब तूं "मैं बकरा हूँ" इस मिथ्या अभिमानको छोडकर "मैं सिंह हूँ" ऐसा निश्चय कर। पहाड़ी सिंहकी बातको सुनकर और सब लक्षणोंको विचार कर उस अपनेको बकरा माननेवाले सिंहने मिथ्या बकरेपनेके अध्यासको छोड़-

कर अपनेको सिंह जाना। और मनमें पश्चात्ताप किया कि, इतने दिनोंतक बकरोंके संगसे अपना स्वरूप भूलकर अपनेको बकरा मानकर मिथ्या बन्धनमें पड़ा रहा। अब मैं कभीभी बकरोंका संग न करके बकरोंका नाश करूँगा। ऐसा निश्चय कर वह कृतार्थ हुआ सिंह, बकरोंका संग छोड़कर सिंहोंके संग विचरने लगा।

उपरोक्त दृष्टान्तका सिद्धान्त.

इसी प्रकारसे देहके द्रष्टा आत्माको अनादि कालसे जो स्वस्वरूपका अज्ञान हो रहा है इसके कारणसे तथा काम कर्मादिकोंके सम्बन्धसे अविद्या कल्पित देह इन्द्रियादिके समुदायरूप बकरेके झुण्ड-में आकर उन्हींमें अध्यास करके यह अपनेको मनुष्य, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण आदि वर्णी और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमी मानता है। और अपने यथार्थ स्वभाविक स्वरूप साक्षी, द्रष्टा और सच्चिदानन्दको भूलकर भ्रमता है। और गेरड़िएके समान भेदवादी गुरू

भी इसे कहते और उपदेश करते हैं कि, तू संसारी है; देह है; कर्ता है; भोक्ता है. ऐसे विपरीत ज्ञानको सुनकर इसका अध्यास और भी दृढ होता जाता है. इसी अध्यासके दृढ होनेसे अज्ञानी जीव अपनेको देहादिक मान कर नाना कर्मोंरूपी बनमें विचरता और वारम्वार आवागमनको प्राप्त हो रहा है।

परन्तु अज्ञानी जीवके पूर्ण संचित अनन्त पुण्य कर्मोंका उदय होवे और उन पुण्य कर्मोंके फल देनेवाले जगदीश्वरकी कृपासे जब वेदान्तशास्त्रके यथार्थ वेत्ता कोई ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु मिलें तब वह गुरु उसके उत्तम लक्षण और मुमुक्षुताको देखकर, जिस प्रकार उपरोक्त पहाड़ी सिंहने बकरेके संगी सिंहसे पूछाथा, पूछे कि–

गुरु–तू कौन है ? तूने ब्रह्मस्वरूप जाना है ?

शिष्य–मैं मनुष्य हूँ मूझसे ब्रह्मस्वरूप कैसे जाना जावे ?

गुरु—हे भाई! यह तेरा देह मनुष्य है। इस देहका द्रष्टा तू आत्मा सदा देहसे भिन्न है। तू मनुष्य नहीं है, तू ब्रह्म है। तू अज्ञानसेही कहता है कि, ब्रह्मस्वरूप कैसे जाना जावे।

शिष्य—हे भगवन्! आप कहते हौ कि—"तू ब्रह्म है" किन्तु मैं ब्रह्म कैसे हो सकता हूँ। मैं तो संसारी, कर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी हूँ। मुझे तो आपका उपदेश कुछ भी अनुभवमें नहीं आता है।

गुरु—हे मुमुक्षो! तू विचारकर देख कि यह तेरा देहाभिमान है सोई तुझे संसारी, कर्त्ता, भोक्ता, सुखी और दुःखी बना रहा है। नहीं तो यथार्थ तू इसका द्रष्टा है। देहका लक्षण एक भी तेरे साथ मिलता नहीं है। [जिस प्रकार दृष्टान्तमें बकरोंका लक्षण सिंहके साथ नहीं मिलता है] और ब्रह्मके सच्चिदानन्द स्वरूपके सर्व लक्षण तेरे आत्मामें मिलते हैं। [जिस प्रकार दृष्टान्तमें सिंहके लक्षण सिंहके साथ मिलते हैं] जिस प्रकार

ब्रह्म सत्य है उसी प्रकार तू जाग्रतादि तीनों अवस्थामें सत्य है। जिस प्रकार ब्रह्म ज्ञानरूप है, वैसेही तू तीनों अवस्थाको जानता है इससे तू भी ज्ञानरूप है। जैसे ब्रह्म आनन्दरूप है वैसेही तूभी परम प्रेमास्पद होनेके कारण आनन्दरूप है। तू ब्रह्मके समान अस्ति, जायते आदि षट् विकारोंसे रहित है। यह तेरा देह, दृश्य, असत्य, जड़ दुःखरूप, और अस्ति आदि छ विकारोंवाला है। इस देहके साथ तेरा कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, केवल अपने स्वरूपके अज्ञानसे तूने सुख, दुःख, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अन्तःकरणके धर्मोंको भ्रान्तिसे अपनेमें माना है। यथार्थमें तू सब विकारोंसे रहित शुद्ध ब्रह्म है तुझमें संसारका नाम भी नहीं है।

इस अर्थमें श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धके अट्ठावीसवीं अध्यायमें श्री भगवानने उद्धवसे कहा है।

॥ श्लोक ॥

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।

अहंकारस्य दृश्यंते जन्म मृत्युश्चनात्मनः ॥

अर्थ ॥ शोक (दुःख) हर्ष (प्रसन्नता) भय (डर) लोभ, मोह, स्पृहा (इच्छा) जन्म, मृत्यु, आदि शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि सब धर्म अहंकारमें देख पड़ते हैं आत्मामें नहीं हैं।

क्योंकि, सुषुप्ति समाधि आदि अवस्थामें आत्मा है किन्तु अहंकार लीन होगया है इस लिये सुख दुःख आदि धर्मकी प्रतीति नहीं होती और जाग्रतमें अहंकार है इस हेतु सुख दुःख आदि प्रतीत होता है। इसलिये ये धर्म अहंकारमें हैं और आत्मा निर्विकार है।

इस प्रकार जब सद्गुरु बोध करे तब शिष्य देहाध्यास छोड कर "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा निश्चय करे तब संसारदुःखसे मुक्त होवे। किन्तु दृष्टान्त-में जिसप्रकार पहाड़ी सिंहके उपदेश विना उपरोक्त अज्ञानी सिंहको बकरेपनेका अध्यास हुवा था उसी प्रकार अज्ञानी जीवात्माभी सद्गुरुके उपदेशविना

अनादि कालके भ्रमसे अपनेको देह माने हुआ है।

इस प्रकारसे प्रथम चौपाईके पूर्वार्द्धमें अनादि कालके अज्ञानसे जीवको देहाध्यास हुआ है। सो वर्णन किया है। अब उत्तरार्द्धकी चौपाईमें देहाध्यासके फल जन्म मरण आदि संसारका वर्णन करते हैं।

"ते सारू फरे चौरासी लक्ष योनिने इति"

अपने स्वरूपको भूलकर देहमें अध्यास करनेके कारणसेही चौरासी लाख योनिमें फिरता है और वारम्वार जन्म–मरणको प्राप्त होता है। इस विषयका दृष्टान्त नीचे कहते हैं उससे समझ पडेगा।

अन्धेका दृष्टान्त।

(देहाध्याससे चौरासी लक्ष योनिकी प्राप्ति)

किसी वड़े नगरमें एक अन्धा रहता था। जब अनेक प्रकारके दुःखोंके कारण उसे उस शहरको छोड़कर वाहर जानेकी इच्छा हुई। तब उसने

किसी आदमीसे पूछा कि, शहरके बाहर जानेका मार्ग कहां है? उस आदमीने जबाब दिया कि, इस नगरका द्वार एकही है इस लिये तू किलाकी दीवारको पकडके उसीके सहारे चला जा, चलते चलते जहां तुझे दरवाजा मिलेगा, वहांही नगरसे बाहर जानेका मार्गभी मिलेगा, उसी द्वारसे बाहर चला जाना। बस तेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।

इस प्रकार सुनकर वह अन्धा दीवारको पकडकर चला। संयोगसे उस अन्धेके शरीरमें दादका रोग था सो चलते चलते जब वह द्वारके निकट पहुंचा तब दादमें खुजली आनेके कारण चलतेही चलते किलेके दीवारसे हाथ हटाकर खुजलाने लगा। जब वह दादको खुजला चुका तब फिर हाथ बढाता है तो किलेकी दीवारपर हाथ पड़ा, क्यों कि, चलते चलते द्वार पीछे रहा गया था इससे वह बिचारा अन्धा फिरसे किलेका चक्कर लगाने लगा। नगर बड़ा था इससे बिचारेको चलते चलते कहीं कांटा

चुभता है तो कहीं पत्थरका ठोकर लगता है। इस प्रकार अनेक दुःख सहन करता हुआ विचारा अन्धा जब जब द्वार पर पहुंचता है तब तब भाग्य दोषसे दादमें खुजली उठती है और द्वार पीछे रह जाता है।

इस प्रकार वारम्वार फिर फिर कर वह महान दुःख भोगता है। इसी प्रकार

उपरोक्त सिद्धान्तका दृष्टान्त।

अन्धेके स्थानमें अज्ञानी है, किलाके स्थानमें चौरासी लाख योनि है, द्वारके स्थानमें मनुष्यशरीर समझना, दादके स्थानमें विषयवासना है। चौरासी लक्ष योनिमें फिरते फिरते जब यह जीव मनुष्य शरीरमें आता है, जो मुक्तिका द्वार है। तब इस मनुष्य शरीर-रूप मोक्षद्वारमें आकर ब्रह्मनिष्ठ गुरुके उपदेशद्वारा अपने स्वरूपको जानकर चौरासी लक्ष योनीसे निकलकर मोक्षसुखको पा सकता है। परन्तु अज्ञान-रूप अन्धतासे मनुष्यशरीरको मुक्तिका द्वार न

जानकर नाना प्रकारके विषयभोग तथा असदाचरणरूपी दादमें समस्त आयु व्यर्थ गवाता है। जिस प्रकार दादको खुजलाना अत्यन्त प्रिय जान पड़ता है उसी प्रकार विषयभोग भोगना बहुत अच्छा लगता है। इस कारण विषयभोगसे विरक्त होकर जीव परमात्माके भजनमें नहीं लगता। इसी प्रकार विषयभोग भोगते आयु व्यतीत होनेसे मनुष्यशरीररूप मोक्षद्वार छूट जाता है। और चौरासी लाख योनिरूप किलाकी दीवार अर्थात् बैल घोड़ा गधा आदि पशु शरीर प्राप्त होते हैं। जिसमें महासंकट भोगना पड़ता है। जिस पशुपर बड़े बड़े बोझे लादे जाते हैं। जिसको मार मार कर काम कराया जाता है, उसको जब कोई घास दे तबही खा सकता है, कोई पानी दे तब पी सकता है। इसी प्रकार उस पशुका कोईभी व्यवहार अपने आधीन नहीं होता। ओहो! यह कितना बड़ा दुःख? चलते चलते थक जाय तब भी यह नहीं

कह सकता कि मैं थक गया हूँ, कि मुझसे चला नहीं जाता है। इस प्रकार पराधीन होकर पशु अनन्त प्रकारके दुःख भोगते हैं। मनुष्यदेह पाकर आत्मज्ञानको जिसने सम्पादन नहीं किया उसको चौरांसी लक्ष योनिमें भटक भटक कर वारम्वार आवागमनमें रहना होता है। मनुष्यदेह जैसा अमूल्य तकको छोड कर जो मोक्ष सम्पादन नहीं करता, और विषयभोग तथा संसारी मान बडाईमें अपनी आयु गवाँता है वह अवश्य पशु शरीर पाकर महान संकटको पाता है।

प्रबोधसुधाकर नामक ग्रन्थमें श्रीमच्छंकराचार्य गुरुने कहा है।

वृत्त उपगीति।

नरदेहातिक्रमणात् प्राप्तौपश्वाऽऽदि देहा-

---

१ मानुप जन्महिं पायके, चूके अवकी घात।
जाय परे भवचक्रमें, सहे घनेरी लात॥ १॥

नाम् । स्वतनोरप्यज्ञानं परमार्थस्याऽत्र का वार्ता ॥ १ ॥

अर्थ--आत्मबोध विना आयु व्यतीत होने पर, मनुष्य देहके नाश होनेसे, पूर्वके पाप कर्मोंके अनुसार जो पश्वादि देहोंको धारण करते हैं उन्हों-को पशु आदि जन्ममें अपने शरीरका भी पूरा ज्ञान नही रहता है, तब उनको परम सुखरूप परब्रह्मका ज्ञान होगा इसकी बातही क्या कहनी है ? अर्थात् पशु पक्षी आदि शरीरमें परब्रह्मका ज्ञान होताही नहीं है। यदि शंका होकि, पश्वादि शरीरमें ज्ञान नहीं होता है तब वहां क्या होता है ? तो ऐसी शंकाका उत्तर यह है कि, उन शरीरोंमें केवल दुःख भोगना पड़ता है। इस विषयमें कहते हैं–

वृत्त आर्या ।

सततं प्रवाह्यमाणैर्वृषभैरुष्ट्रैः खरैर्गजैर्म-

हिषैः । हा कष्टं क्षुत्क्षामैः श्रांतैर्नो शक्यते वक्तुम् ॥ २ ॥

अर्थ–बैल, ऊंट, गदहा, हाथी और भैंस आदि पशुओंके शरीरपर बोझा लादकर सदा चलाते है । इससे वे पराधीन होकर बोझाको उठाकर खैंचके महान कष्टसे चलतें हैं ! अहो ! हो ! कैसी दुःखमय स्थिति । भूख लगनेपर पेटभर खानेकोभी नहीं मिलता, जिससे निर्बल होकर गाड़ी वगैरहका बोझा खींचनेमें अशक्त हो जाता है, तबभी बोल नहिं सकता जिससे कहे कि, मैं थक गया हूँ, मुझे छोड दो ॥ २ ॥

अहो ! हो ! पशुशरीर धारण करनेमें कितना बडा दुःख है । जो दुःख उन पशुओंको भोगना पड़ता है सो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है । इससे यह सिद्ध हुवा कि आत्मज्ञानविना मनुष्यशरीर छूट जानेपर पशुशरीरमें जाकर इस जीवको आदिसे अन्ततक अनन्त कष्ट उठाने पड़ते हैं । आत्मज्ञान

विना मनुष्य शरीरसे वियोग होनेपर जीव चौरासी लक्ष योनिमें अनेक प्रकारके जन्म–मरणका दुःख भोगता हुआ महान पराधीन दशामें भटकता फिरता है। जब जीव माताके गर्भमें जाता है तब वहां यह मल, मूत्र, रुधिर, मांस तथा कफादि धातुओंमें पडे पडे नाना प्रकारकी कृमि और जठराग्निसे अनेक प्रकारका दुःख सहता है। गर्भवास और नरकवासमें कोई भेद देख नहीं पड़ता है। गर्भवासही महान नरकवास है। जन्मके समयभी माता तथा बालकको जो दुःख होता है सो अकथनीय है; क्योंकि, उस समयका दुःख माता तथा गर्भकेही अनुभवमें आता है। इसी प्रकार गर्भसे बाहर होनेपर बाल्यावस्थामें पराधीनतासे, युवा-अवस्थामें स्त्रियादि भोगकी कामनासे और वृद्धावस्थामें नाना प्रकारके रोग, अशक्ति तथा तृष्णा क्रोध इत्यादि और स्त्री, पुत्रादिकके अनादरसे अनन्त दुःख होते हैं। जिसका अनुभव सबको देखनेमें

आता है। इसी प्रकार मृत्युके समयभी समस्त शरीरमें एकही समय असंख्य बिच्छियोंके डंकके समान दुःख होता है। जिस प्रकार जीते मनुष्यका हाथ-पगादि आरेसे काटे जावें तो उसको जैसा दुःख होगा वैसेही मृत्युसमयभी जैसे २ प्राण अंग प्रत्यंगोंको छोड़ता जाता है तो वैसेही दुःख होता है। इसी प्रकारसे अज्ञानी, पराधीन पापी जीवोंको वारम्वार जन्म मरणादि दुःख हुआ करते हैं। इस विषयमें दृष्टान्त देकर श्रीशंकरानन्द मुनिने आत्म-पुराणमें कहा है।—

श्लोक।

जातो बालो युवा वृद्धो मृतो जातः पुन-स्तथा। बंभ्रमीत्येष संसारे घटीयंत्रसमोऽवशः॥ ६॥

अर्थ—यह अज्ञानी जीव संसारमें रहटके समान ऊपर नीचे आया जाया करता है। जिस प्रकार

कुम्हारका चक्र अथवा कोल्हूका बैल सदा फिरा करता है, उसी प्रकार जीव परवश होकर जन्मता है, बालक होता है, युवा होता है और वृद्ध होता है तथा मर जाता है। अज्ञानके कारणसेही यह जीव इस प्रकार बारम्बार घटीयंत्र (रहट) के समान आवागमनमें फिरा करता है और महान् दुःख भोगता है।

इस प्रकारसे पूर्व कहे हुए चौरासी लक्ष योनिमें आवागमनके दुःखको सुनकर शिष्यके मनमें महाभय उपस्थित हुआ तब उसे यह जिज्ञासा हुई कि, यह दुःख कैसे मिटेगा? पश्चात स्मृति होनेसे उसने गुरुकी शरणमें विधिपूर्वक जाकर जन्म-मरणादि दुःखसे निवृत्त होनेके लिये प्रश्न पूछा। सो दूसरी चौपाईमें निरूपण करते हैं।

चौपाई।

जन्म मरण केम टलशे भाई, साधुनो समागम करिये जाई॥ जन्म मरण केम

टलशे महारे, हूं कौन छूँ एवो विचार करे तें वारे ॥ २ ॥

अर्थ—अनेक जन्मोंके कियेहुए, निष्काम वैदिक संचित शुभ कर्मोंके फलसे और प्रसन्न हुए इश्वरके अनुग्रहसे, शान्ति, दान्ति, श्रद्धा, वैराग्य आदि साधनसम्पन्न जिज्ञासुका जन्म-मरण किस प्रकार टलेगा ? [किस उपायसे यह दुःख निवृत्त होगा ?] ऐसी जिज्ञासाके उत्पन्न होनेपर इसका समाधान करते हैं कि, मुमुक्षुको चाहिये कि, साधुका समागम करे ।

शिष्य—साधु शब्दका अर्थ क्या है ? केवल कौपीन, कमण्डलु आदि धारण करके वेशमात्रसे फिरनेवालेको साधु कहते हैं कि, साधुका लक्षण इनसे भिन्न है ? हे गुरो ! जिन लक्षणोंसे साधुको पहचान कर उनकी संगति करनेसे जन्म-मरणका दुःख निवृत्त होता है तिन लक्षणोंको आप कृपा करके कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! साधु उसे कहते हैं जो स्वधर्मका त्याग नहीं करता । जिसमें समदृष्टि, वैराग्य, शान्ति, दान्ति, धीरज, दया, अदम्भ, अमान, अक्रोध, क्षमा, अद्वेष, शुचित्व आदि शुभ गुण स्वभावसेही रहते हैं। जो श्रोत्रिय अर्थात् वेदोंको जाननेवाला और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् ब्रह्मस्वरूपमें सत्यानिष्ठा रखनेवाला होता है । जिस साधुमें ये सब गुण वर्तमान हों उसे सद्गुरु जानकर उसीका समागम करना ।

शिष्य–हे स्वामिन् ! आपने सद्गुरुके लक्षणोंमें श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ ऐसे दो विशेषण बतलाया । यदि इन दोमेंसे किसी एकही विशेषणवाला कोई गुरु होय तो क्या उससे कल्याण नहीं हो सकता ?

गुरु–हे शिष्य ! निस्सन्देह एक विशेषणवाला गुरुसे यथार्थ बोध प्राप्त नहीं होता। इस लिये दोनों

---

१ ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी बाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥

२ कर बन्दगी विवेककी, वेश धरे सब कोय ।
वह बन्दगीवहीं जानदे, जहँ शब्द विवेक न होय ॥

विशेषणोसंयुक्त गुरुकी शरणमें जाना उचित है। इसपर तुझे एक दृष्टान्त सुनाता हूँ सो ध्यान देकर सुन।

स्वदेश जानेवाले पुरुषका दृष्टान्त।

(श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ दोनो विशेषण-
वाले गुरुसेही आत्मबोध होता है।)

अपने घरको जानेवाला कोई पुरुष मार्गसे जा रहा था। चलते चलते उसके रास्तेमें एक नदी आयी। उस नदीको पार होनेके लिये वह पथिक नदी किनारेके मनुष्योंसे नदीपार होनेकी युक्ति पूछने लगा। उसकी बातको सुनकर एक पुरुष जो शरीरसे हृष्टपुष्ट और चलनेमें बलवान, किन्तु आंखसे अन्धा था उसने कहा कि, यदि तू मेरे कन्धेपर बैठ तो मैं तुझे उस नदीके पार पहुंचा दूँ। उस अन्धेकी बातको सुनकर उपरोक्त पथिक विचार करने लगा कि, जो स्वयम् आंखसे अन्धा है, जिसको नदीका दूसरा किनारा देखभी नहीं पड़ता है वह मुझे कैसे पार उतार सकेगा? इसलिये ऐसे पुरुषके विश्वासपर जाना भयजनक है। अपने हाथसे अपने पैरमें

कुल्हाडा मारना है। यह विचार कर पथिकने अन्धेसे कह दिया कि, मैं तेरे साथ नदी पार उतरने नहीं जा सकता। उसी समय उसी स्थानपर एक दूसरा पंगु पुरुष बैठा हुआ था। वह आंखसे देख तो सकता था किन्तु पैरसे चल नहीं सकता था। उसने पथिकसे कहा कि भाई ! तुझे दूसरेके साथ जानेकी जरूरत नहीं है।. नदीमें कहां कितना पानी है सो मैं खूब जानता हूँ इसलिये मेरे बताये मार्गसे जा तो सहजमेंही पार उतर जावेगा। इतना कह उस पंगुने मार्गका निदर्शन इस प्रकार किया कि, "इस किनारेसे तुम जरा नीचे उतरकर बीस कदम सीधे चले जाव, फिर दहिनी ओर फिरकर चले जाना." बस पार उतर जावगे। उस पंगुके बचनको सुनकर पथिकने फिर विचार किया कि यह स्वयम् पैर विना है, यह किसी दिन नदीमें क्या गया होगा ? तब इसको पानीकी गहिराई और उथलाईकी खबर ही क्या ? इसलिये यदि मैं इसके कहनेपर नदी लांघने

गया और नदीमें किसी जगह पानी अधिक आया और उसमें मैं डूबने लगा तब उस समय यह पंगु मेरी क्या सहायता करसकेगा ? इस प्रकार विचार कर उस पंगुकी बातभी पथिकने नहीं मानी। यद्यपि वह पंगु सत्यभी कहता होगा और पानीबी थोडा होगा तथापि उस पथिकको पंगुके वचनपर विश्वास नहीं आया इसलिये वह उस पारभी नहीं जा सका।

इतनेहीमें एक तीसरा मनुष्य दैवेच्छासे आपहुंचा जो आंखोंसे देख सकता था और पैरसे चलभी सकता था तथा तैरनेमेंभी समर्थ और नदीकी गाहिराई उथलाईको जाननेवाला था। पथिककी बातको सुन कर उसने कहा कि, तूं मेरे साथ आ, मैं तुझे पार उतार दूं। पथिकको उसके वचनपर झट विश्वास आया और उसी आदमीके पीछे पीछे चलके सहजमें ही नदी पार उतर कर स्वदेशको पहुंच गया।

उपरोक्त दृष्टान्तका सिद्धान्त ।

१–ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होनेकी इच्छावाले मुमुक्षुको स्वदेश जानेवाला पथिक समझना चाहिये । २–जन्म मरणरूपी प्रवाह करके युक्त संसाररूप नदी है । ३–नदी किनारे बैठा हुआ अन्धा श्रोत्रिय अर्थात् केवल वेदशास्त्र जाननेवाला पुरुष है । जिसको शास्त्र निरूपणरूपी पगतो है, किन्तु दूसरे किनारारूपी ब्रह्मको देखनेकी शक्ति नहीं रखता । इससे केवल श्रोत्रिय गुरुकी सहायतासे स्वस्वरूपकी प्राप्ति होती नहीं है । ४–पंगुको केवल ब्रह्मनिष्ठ जानना । जिसको गुरुप्रसादसे ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञानरूपी नेत्र तो है जिससे संसाररूपी नदीके उसपारके किनारारूप परब्रह्मको देखता है; किन्तु वेदवाक्योंके प्रमाणपूर्वक युक्तीसे उपदेश करनेरूपी पग उसको नहीं है, इससे यदि वह जीवको ब्रह्मरूपकी प्राप्तिके लिये उपदेश करता हुवा कहे कि, "यह संसाररूप नदी तुच्छ है, ईश्वर अनुग्रहसे यह गोवच्छ खुरके समान सहज

मेंही पार किया जाता है। परमात्मा एक अद्वितीय, अनंत, असंग, अक्रिय, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, नित्य, प्रत्यज्ञात्मा, देहत्रयसे विलक्षण, अवस्थात्रयका साक्षी, पंचकोशातीत, व्यापक, द्रष्टा, स्वयम् ज्योति, सच्चिदानन्दरूप है। उसीके ज्ञान करके संसार नदीसे सहजहीमें पार हो जायगा।" यह सत्य उपदेश होनेपर भी अन्य मुमुक्षुओंको उसके वचनपर विश्वास नहीं आता है। इसलिये उसके वाक्यमें भी सन्देह रहता है। इसलिये दृष्टान्तमें जैसे.

५—नेत्र और पग, दोनोंवाले, पुरुषकी सहायतासे पथिक नदी पार हुआ, उसी प्रकार श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ इन दोनो विशेषणोंसे युक्त सद्गुरुद्वाराही मुमुक्षु संसार नदीसे पार हो सकता है। इसलिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकेही शरणमें जाना उचित है।

गुरु शरणमें जानेकी विधि ॥

अथर्व वेदके मुण्डक उपनिषदमें जिज्ञासुओंको

समिधादि भेट हाथमें लेकर विनयपूर्वक परमतत्त्वके ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ दोनों विशेषणवाले गुरुके शरणमें जानेका निरूपण किया है। उसी प्रकार भगवान कृष्णचन्द्रने भगवद्गीताके चौथे अध्यायके ३४ वें श्लोकमेंभी कहा है।

श्लोक।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

अर्थः—सद्गुरुको साष्टांग नमस्कार करके और बन्ध क्या? मोक्ष क्या? विद्या किसे कहते हैं? अविद्या किसका नाम है? आत्मा कौन? परमात्मा कौन? तथा उसकी एकता किस प्रकारसे जानी जाती है? इत्यादि प्रश्नों तथा सेवाकरके प्रसन्न हुए सद्गुरुके पाससे परमश्रेष्ठ मोक्षका साधन, अद्वितीय परमात्माका ज्ञान तू प्राप्त कर। ज्ञानी (श्रोत्रिय) तत्त्वदर्शी (ब्रह्मनिष्ठ) सद्गुरु तुझे उपदेश करेंगे।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धके

तीसरे अध्यायमें प्रबुद्ध नामक योगीश्वरने राजा जनकसे कहा है।

श्लोक।

तस्माद्गुरुं प्रपद्यंते जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।

अर्थः—इस लोकके तथा परलोकके सर्व विषयभोग कर्मजन्य होनेसे नाशमान तथा दुःखदायी है इसलिये उत्तम (नाशरहित परम सुखमय) श्रेय (मोक्ष) को जाननेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुषको वेदके सत्य अर्थके जाननेवाले श्रोत्रिय और परब्रह्मको अपरोक्ष अनुभव करके जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ तथा शान्तिवान सद्गुरुकी शरणमें जाना चाहिये।

शिष्य—हे प्रभु! ऐसे सद्गुरुकी शरणमें जाकर क्या करना चाहिये?

गुरु—हे शिष्य! गुरुकी शरणमें प्राप्त होकर इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) प्रश्न पूछना चाहिये।

"जन्ममरण केम टलशे महारे" हे दयालु गुरो ! इस संसारमें मुझे जो जन्ममरण प्राप्त होता है सो कैसे छूटेगा ? क्या जप, तप, तीर्थ करके ? कि यज्ञादिक कर्मद्वारा, या किसी अन्य साधनसे ? किस प्रकारसे यह निवृत्त होगा ? सो आप कृपा करके कहीये ! फिर उसी समय यह विचार करे कि, मैं कौन हूं और गुरुसे भी यही पूछे कि, मैं कौन हूं ? यह स्थूल देह मैं हूं ? कि इन्द्रिय मैं हूं ? कि, प्राण, मन, अहंकार आदि अलग अलग मैं हूं ? या इन सबोंका समुदायरूप हूं ? अथवा इन सबोंसे मैं अलगही हूँ ? क्या हूं ? सो आप कृपाकर कहिये ।

इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासा युक्त वाणी सुनकर सद्गुरु जन्म-मरण मिटनेका उपाय बताते हैं ।

चौपाई ।

सद्गुरु कहे स्वस्वरूप जान। एटले तारूं जन्म टलशे ए प्रमान॥ तारा जन्ममरणनो

कागल फाटे। सद्गुरु वचने विश्वास राखे ए माटे ॥

टीका–सद्गुरु कहते हैं कि, हे शिष्य ! तू अपने स्वरूपको ऐसे जान कि, "मै सच्चिदानन्दरूप हूं" "इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदिका साक्षी प्रत्यक् आत्मा हूं" और "देह इन्द्रियादिक मैं नहीं हूं" तथा "देहके जो धर्म वर्ण आश्रमादिक और इन्द्रियोंके जो धर्म अन्ध बधिरादिक भी मेरे स्वरूपमें नहीं है"-"मैं केवल शुद्ध चैतन्य हूं"। इस प्रकारका ज्ञान जब तुझको दृढरूपसे होगा तब उसी समय तेरा आवागमन नाश हो जायगा। यह प्रमाण सिद्ध है क्यों कि, इसी अर्थको साक्षात् श्रुति भगवती वर्णन कर रही है-"ज्ञानसेही मोक्ष होती है" "आत्माको जानकरही मृत्युसे पार होकर मोक्ष मिलती है" "ज्ञानविना दूसरा कोईभी मार्ग मोक्ष देनेवाला नहीं है"। इसी प्रकार स्मृतिमेंभी कहा है। "आत्मज्ञानविना केवल जप, तपादि कर्मों-

सेही मोक्ष होती नहीं है क्योंकि, साधनमात्र अन्त:-करणकी शुद्धिके कारण हैं और मोक्षका कारण केवल ज्ञान है।" जिसप्रकार रसोई करनी होतो लकड़ी, बर्तन, अनाज आदि सब सामग्री उपस्थित होनेपर भी अग्नि विना रसोई नहीं बन सकती; उसी प्रकार सब साधन रहने परभी ज्ञान विना मुक्ति नहीं मिलती। इसलिये हे शिष्य! तू अपने स्वरूपको जान। इस प्रकार चौपाईके पूर्वार्द्धमें श्रुति स्मृति प्रमाण सिद्ध ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति कथन करके, अब उत्तरार्धमें ज्ञानकी प्राप्ति तथा जन्मादि दुःखोंके कारणरूप पापादि कर्मोंकी निवृतिके लिये ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके उपदेशमें विश्वास रखना निरूपण करते है।

"तारा जन्मरणनो कागळ फाटे" इति।

तू जो सद्गुरुके उपदेशमें विश्वास रखेगा, तो तेरे जन्ममरणका काग़ज़ फट जायगा।

शिष्य—हे सद्गुरोः— आपने जन्ममरणका काग़ज़ फटना कहा सो जन्ममरणका काग़ज़ क्या? यह

मेरी समझमें नही आया, कृपाकर इसे स्पष्ट कहियें ?

गुरु—हे पुत्र ! जीव जो जो पापपुण्य आदि कर्म करते हैं उसे यमराजाका बडा मंत्री चित्रगुप्त लिखता है। फिर उन उन कर्म करनेवाले जीवोंको यमराजा उन्ही कर्मोंके अनुसार उनका सुखदुःखादि फल उनसे भोगवाता है। उन्ही कर्मोंके प्रभावसे जीव चौरासी लक्ष योनिमें फिरता है। इसका विस्तारसे वर्णन पुराणोंमें लिखा है। यही जन्ममरणका काग़ज़ है। जब सद्गुरु, सच्चिदानन्द स्वात्माका, उपदेश करता है और शिष्य सद्गुरुके वचनमें दृढ विश्वास रखकर उसका दृढ निश्चय करता है तब वह चित्रगुप्तका लिखा हुआ काग़ज़ फट जात है। अर्थात् जन्ममरणका दुःख निवृत्त हो जाता है। इस बातको समझानेके लिये एक दृष्टान्त कहता हूं उसे ध्यान देकर सुन।

विष्णुदत्त साहुकारका दृष्टान्त।

(जन्ममरणके काग़ज़ फाटनेके बारेमें)

एक किसी साहूकारने भूलसे ऐसे लोगोंकेसाथ

व्यवहार किया जो दुष्ट थे. अन्तमें, दुष्टसंगके प्रभावसे, उस साहुकारका सब धन नष्ट हो गया। लाभके बदले उसे यह फल मिला कि, वह स्वयम् कर्जदार हो गया। जब कर्जवाले लोग उससे तकाजा करने लगे तब उसने अपने मनमें विचार किया कि, अब कहीं नौकरी करके रुपया पैदा करना चाहिये जिससे कर्ज पटे। इसलिये वह बजाज वगैरह छोटे छोटे पूंजीवालोंकी दूकानपर जाकर नौकरी करने लगा। उस नौकरीसे उसे दोसौ रुपये सालकी आमदनी तो हुई किन्तु वह आमदनी इतनी थोडी थी कि उससे घरका खर्चेही चलना कठिन था. इससे उसके ऋणका व्याजभी नहीं पटने लगा. तब तो महाजनोंने फिर तकाजा करना आरम्भ किया, जिस्से वह बिचारा साहूकार बहुत दुखी होने लगा और अपने मित्रोंसे दुःख निवारणकी सलाह पूछने लगा। जिसके मनमें जैसा आया उसने वैसाही बतलाया. अन्तमें उसके एक विवेकी मित्रने कहा के हे मित्र ! ऐसी छोटी तन-

ख्याहसे ऐसे हल्के लोगोंकी नौकरी करके तू कदापि ऋणमुक्त नहीं होगा वरण उलटा तेरा ऋण बढता जायगा और तू अधिकाधिक दुखी होता जायगा। इसलिये मैं तुझे एक युक्ति बताता हूं, उसके अनुसार यदि तू करेगा तो अवश्य सुखी होगा; अन्तमें ऋणमुक्त होकर आनन्द प्राप्त करेगा। मित्रकी बातको सुनकर साहूकार उसको धन्यवाद देताहुआ बड़ी जिज्ञासासे पूछने लगा कि, हे प्रिय मित्र! वह युक्ति कौनसी है? सो कृपाकर शीघ्र बताइये, मैं अवश्य उसीके अनुसार कार्य करूंगा। उस साहूकारकी उत्कट जिज्ञासा देखकर उसके मित्रने कहा कि, इस ग्राममें विष्णुदत्त नामक बडा धनी साहूकार है धनके साथ साथ वह बडा उदारभी है। तू उसीकी शरणमें जाकर तनख्याह मांगे विना तनमनसे उसके कामको अपने कामकेसमान जानकर करने लग। वह जो आज्ञा करे उसको सत्यनिष्ठाके साथ बराबर करता जा। जब वह तुझे वेतन देने लगे तो कहना कि,

मुझे अन्नवस्त्रसे अधिक किसी वस्तुकी आवश्यकताही नहीं है। इसप्रकार करनेसे उसे तुझपर पूरा विश्वास जमेंगा, तब वह तुझे अपना समझकर समय पाकर तुझे क़र्जसे मुक्त करा देगा।

अपने मित्रकी बातको सुनकर वह साहूकार अब नित्य विष्णुदत्त सेठके घर जाने लगा। और मित्रके उपदेशानुसार सत्यताके साथ निष्काम होकर उसके काममें तनमनसे लग गया। कुछदिनोंके पश्चात् जब सेठ विष्णुदत्तको उस साहूकारकी सच्चाई, निष्कपटता, ईमान्दारी और निष्कामताका पूरा विश्वास हो गया तब उस (विष्णुदत्त) ने उस साहूकारको अपने बड़े मुनीमकी पदवी देकर अपने सब कारबारका अधिकार दे दिया।

इस प्रकारसे ऊंचे अधिकारको पाकर साहूकारको काम करते करते जब दो तीन वर्ष बीग गये तब उसके प्रथमवाले महाजन लोगोंने विचार किया कि, अब वह ऊंचे पद पर है तो पैसाभी कमाता होगा,

अब अपना पैसा वसूल हो जायगा। इस प्रकारकी आशाही आशामें कुछदिन बीत जानेपरभी जब उसने अपना ऋणका एक पैसाभी किसीको नहीं दिया। तब सबने उससे मांगनेका विचार किया, फिर एक दिन जब वह अपने कामपर जा रहा था तब एक महाजनके आदमीने उससे तक़ाज़ा करके दश पांच भली बुरी सुनायी। वह सुनकर साहूकार बहुत उदास होकर अपने सेठके घर गया। सेठने जब अपने मुनीमको उदास देखा तब पूछा कि, मुनीमजी! आज क्या कारण है कि, तुम ऐसे उदास हो रहे हो? सेठकी बात सुनकर मुनीमकी आंखोंमें आंसू आगया। आंसू आते देखकर सेठने पूछा तुह्मारे ऊपर क्या दुःख है? सो स्पष्ट कहो मैं अभी उसके निवारणका उपाय करूंगा। मेरे पास कहनेमें तुह्मे कुछ भय न करना चाहिये। चाहे कैसाभी दुःख होगा मैं अवश्य उसका निवारण करूंगा। तब मुनीमने कहा हे स्वामिन्! प्रथम मैं भूलमें आकर कुछ

लोगोंके साथ व्यापार करने लगा था। वे मेरे साथी दुर्जन निकले और मेरा सब कारबार बिगड़ गया; गांठका खोया सो खोया साथही ऋणीभी होगया। वह ऋण अबतक मेरे शिरपर पड़ा हुआ है। इतने दिनोंसे महाजन लोग मुझसे कुछ कहते नहीं थे किन्तु आज उनके नौकरोंने भरे बाजारमें मुझे खड़ा करके भली बुरी सुनायी है। इसप्रकार प्रतिष्ठापर धब्बा आते देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ है।

साहूकारकी बात सुनकर विष्णुदत्त सेठने कहा भला इतने दिनोंतक तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा? अबतक कहे होते तो कबका तुह्मारा ऋण चुक गया होता और आज यह नौबत नहीं आती। हरि इच्छा जो हुआ सो हुआ; अब यह बताओ कि उन महाजनोंके पास तुह्मारी ओरसे लिखा हुआ कुछ काग़ज़ है कि नहीं? यदि है तो उन महाजनोंका नाम बताओ; मैं आजका आजही तुह्मारे ऋणकी सफाई करादूंगा; मैं जो करूंगा उसपर तुझे भरोसा

रखना होगा। मुनीमने कहा आप जो कुछ करें मुझे सब स्वीकार है। तब सेठ विष्णुदत्तने उसके सब लेनदारोंको बुलाकर सबका फरिऔता करके उनका सब कर्ज अदा करके कागज़ोंको उसी समय फड़वा दिया।

उपरोक्त दृष्टान्तका सिद्धान्त।

अज्ञानी जीव कामक्रोधादि दुर्जनोंके संगसे अपना आत्मबोधरूपी धन खोकर मैं संसारी, कर्ता, भोक्ता हूं, ऐसे अभिमानके संयोगसे पाप पुण्यरूप कर्म करके यमराजके ऋणी बने। जो पाप पुण्य आदि सब कर्म पीछेसे भोग देनेके लिये कागजमें लिखा जाता है जिससे बारम्बार यह अज्ञानी जीव जन्मता और मरता है। इस प्रकार दुःख भोगते हुए, कर्मोंके फलरूप जन्मादि दुःखोंसे छूटने के लिये, द्वैतवादी गुरुओंकी शरणमें जाकर, उसकी सेवा करने लगा। किन्तु उनसे मिले हुए उपदेशरूप वेतनसे दुःख छूटा नहीं। क्योंकि,

द्वैत वादियोंके उपदेशद्वारा जन्म मरण का छूटना असम्भव है। उलटा द्वैतवादियोंके उपदेशसे संसार दृढ होकर और भी दुःख बढने लगा। इतनेमें अनेक जन्मोंके पुण्यसे कोई सदाचरणमें लगानेवाला ज्ञानवान मित्र मिला जिसने अज्ञानी जीवको समझाया कि, हे भाई! ये भेद-वादी गुरु स्वार्थी, मात्र धन हरन करनेवाले हैं; इनके संगसे शोक, जन्म, मरणरूपी दुःखसे निवृत्त होकर परम पदकी प्राप्ति कदापि नहीं होगि। इस-लिये तू इनका संग त्यागकर किसी श्रोत्रिय, ब्रह्म-निष्ठ, वैराग्यवान तथा परमदयालु सद्गुरुकी शरणमें जाकर निष्काम होकर उनकी सेवा कर। जब तेरी निष्कपटताको देखकर सद्गुरु तुझे ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करेंगे तब तेरे कर्मोंका कागज जो जन्म का मूल है फट जायगा। मित्रकी ऐसी बातको सुन कर अज्ञानी जीवने ब्रह्मवेत्ता गुरुकी शरणमें जाकर सेवाकरके गुरुको प्रसन्न किया। तब गुरु

दया करके कहता है "तेरी क्या इच्छा है ?" तू स्पष्ट कह। तेरा जो कुछ दुख होगा उसके निवृत्त होनेका उपाय मैं तुझे बताऊँगा। गुरुकी प्रसन्नता और अपने ऊपर विशेष अनुग्रह देखकर शिष्य कहता है।

शिष्य—हे भगवन्! अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैव इन तीन तापोंद्वारा, ग्रीषमऋतुके, मध्यान्ह कालके सूर्यकी, गर्मीसे तपते हुए पुरुषके समान मैं तपायमान हो रहा हूं। और मेरे किये हुए पुण्य पापादि कर्मोंका हिसाब यमराजके पास है, सो कृपाकर ऐसा उपाय बतलाईये जिससे यमराजाके पासका कर्मरेखवाला हिसावका कागज़ फटजाय। शिष्यकी बातको सुनकर गुरु उत्तर देते हैं!

गुरु—सर्व पाप कर्मोंका त्याग करके, पुण्य कर्मका फल परमात्माको अर्पण कर, शमादि साधनको ग्रहण और दुर्जनोंके संग त्याग पूर्वक, यदि मेरे उपदेशमें तू विश्वास रखे तो तेरा कल्याण होगा।

शिष्य–हे प्रभो ! मुझे आपके वचनोंमें विश्वास है अब आप दया करके शीघ्र उपदेश कीजिये ।

गुरु–हे शिष्य ! सावधान होकर सुन । एकाग्र होकर सुननेसेही तू मेरे उपदेशको ग्रहण कर सकेगा।

"यह जान कि, यह स्थूल देह तू नहीं है. यह देख पड़ता है इसलिये दृश्य है और तू इसका द्रष्टा है । इसलिये तू दृश्य देह नहीं है । इस देहके मरने पर इसको जला देते हैं इसलिये यह तो कर्मभोग भोगही नहीं सकता है और इसका साक्षी आत्मा तू पूर्ण और व्यापक है, तुझको भी आकाशके समान जाना आना है ही नहीं, इसलिये तू कर्मफलका भोक्ता भी नहीं । इसप्रकार शेष रहा जो चिदाभासरूप जीव संयुक्त सूक्ष्म देह सोई पापपुण्यके सम्बन्धसे नीच ऊंच शरीरमें जाकर जन्म-मरणद्वारा सुखदु:खको भोगता है । इस सूक्ष्म देहकाभी,–जीवके अपने वास्तविक स्वरूपभूत सच्चिदानन्द आत्माके अभेद ज्ञान करके,–नाश होता है और सर्व कर्मभी ज्ञाना-

भिसे जल जाता है। जब कर्मका कर्ता भोक्ताहीं कोई नहीं रहा तब यमराजका दीवान चित्रगुप्त किसके कर्मोंको लिखे ? इसलिये यमराज उसके कागजको तुरत फाड़ डालता है। इसलिये देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार आदिमेंसे अहंबुद्धि छोड़कर उन्हे दृश्य जानकर अपनेको उनका प्रकाशक सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, अकर्ता, अभोक्ता, आत्मा जाननेसेही मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस ज्ञानविना जन्म–मरणसे निवृत्त होनेका दूसरा कोइभी साधन नहीं है।"

शिष्य–हे स्वामिन् मेरे कर्म अनन्त कालके और असंख्य हैं, अज्ञानका कार्य्य देहाध्यासभी बहुत कालसे है, उसके निवृत्त होनेके लिये बहुत काल चाहिये। किन्तु आपने कहा कि, सद्गुरुके वचनमें विश्वास रखनेसे तुरत तेरे जन्म-मरणका कागज फट जायगा सो कैसे विश्वासमें आवे सो आप स्पष्ट समझाकर कहिये। तब गुरु उत्तर देते है।

एमां वार नहीं लागशे जान । एवुं वेद वचन छे प्रमान ॥ आ पंचीकरणनो विचार जो करे। तो हमणां मुक्ति मलशे ताहारे ॥४॥

टीका—हे शिष्य! तेरा कर्म, अज्ञान और देहाध्यास अनादि कालका है भी तथापि आत्मज्ञान होनेपर उसको निवृत्त होते कुछभी समय नहीं लगता है। इसी बातपर एक दृष्टान्त कहता हूँ सो सुन।

अनादिकालके कर्मों आदिकी निवृत्ति विषैं गुफाके अन्धकारका दृष्टान्त ।

किसी पहाड़की गुफामें अनादिकालका अन्धकार है। यदि उसको तप करके, जप करके अथवा लकड़ी मारने करके कोई निकालना चाहे तो कदापि नहीं जा सकता,' किन्तु प्रकाश मात्रसेही वह अनादि-कालका अन्धकार एकदम नाशको प्राप्त होगा।

जिस समय दीपक गुफामें पहुंचेगा उसी समय अन्धकार भाग जायगा। वह ऐसा कदापि नहीं कह सकेगा कि, मैं अनादिकालका हूँ इसलिये जल्दी नहीं जाऊँगा; किन्तु अन्धकारके विरोधी प्रकाशके पहुंचतेही वह वहांसे ऐसे अल्प कालमें भाग जायगा कि, उस कालका ज्ञानभी न होगा। इसी प्रकारसे **सिद्धान्तमें** अज्ञान, तज्जन्य देहाध्यास तथा कर्म अनादि कालका है किन्तु "अहं ब्रह्मास्मि" अपरोक्ष ज्ञानरूपी प्रकाशके आतेही उनकी (अज्ञाना-दिककी) तत्कालही निवृत्ति होती है। इसमें वेदवचन प्रमाण हैं। जिनका आशय यह है।

"देवको जानकर सर्व बन्धन निवृत्त होते हैं"
"ब्रह्मको जानने वाला परमपदको पाता है"
"उस आत्माकोही जानकर मृत्युको तरता है"
"मोक्ष होनेके लिये ज्ञान विना दूसरा कोई मार्ग नहीं है"।

इसी प्रकार ज्ञानद्वाराही सर्व पापकर्म नाश हो जाते हैं सो भगवान् गीता अ० ४ श्लो० ३७में कहते हैं।

श्लोक।

यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाऽग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात् कुरुतेतथा॥

टीका—हे अर्जुन! जिस प्रकार खूब प्रज्वलित हुई अग्नि काष्ठोंको जलाकर भस्म करदेता है, उसी प्रकार निरन्तर अभ्यास द्वारा प्रबल हुआ ज्ञानाग्नि, पाप, पुण्य तथा मिश्ररूप समस्त कर्मोंको नाशकर देता है।

शिष्य—हे भगवन्! आपने कहा कि, आत्मज्ञान करकेही मोक्षकी प्राप्ति होती है किन्तु वह आत्माका ज्ञान मुझे किस प्रकार होवे? जिससे मैं मुक्त होउँ सो आप कृपाकर कहिये।

शिष्यकी उपरोक्त जिज्ञासाका उत्तर गुरु चौथी चौपाईके उत्तरार्द्धसे देते हैं।

गुरु–" आ पंचीकरण इति "

हे शिष्य ! जो तू इस पंचीकरणका विचार करेगा तो तुझे आत्मज्ञान होगा और उसी ज्ञान-द्वारा तेरा देहाध्यास निवृत्त हो जायगा, तब तू अभी जीतेजी इसी शरीरमें मोक्षको प्राप्त होगा ।

शिष्य–हे भगवन् ! आपने कहा कि, पंचीकरणके विचारद्वारा मोक्षकी प्राप्ति होगी किन्तु पंचीकरण क्या है ? सोई मैं नहीं जानता; इसलिये आप दया करके पंचीकरण किसे कहते हैं ? सो मुझे बताइये ।

शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें गुरु पांचवीं चौपाईसे पंचीकरण बतलाते हैं ।

चौपाई ।

एमां पंचभूतनो विचार कह्यो । जूदा जूदां तत्त्व बतायो ॥ सद्गुरुमुखे समझी लेजो । तो ब्रह्मसुख पामें आजो ॥

टीका—गुरु कहते हैं। हे शिष्य! उस पंचीकरणमें पंचभूतोंका विचार कहा है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत कहलाते हैं। उसमें इन्हींके स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप तीन शरीरोंके भिन्न भिन्न तत्त्वोंके विभागका वर्णन किया है। और इन भौतिक तत्त्वोंसे भिन्न इनके जाननेवाले द्रष्टा आत्माकाभी तत्त्वस्वरूप वर्णन किया है। इस पंचीकरणका अर्थ ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके पास श्रवण करके समझनेसे आत्मतत्त्वका अनुभव होगा। उसीकी प्राप्तिसे जीतेजी ब्रह्मसुख मिलेगा।

शिष्य—हे भगवन्! ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके पाससे श्रवण करनेकी क्या आवश्यकता है? क्यों कि, पंचीकरण तो प्राकृत भाषामें है जिसको मैं स्वयम् पढ़ सकता हूँ, इसका अर्थभी समझमें आता है तब आपने सद्गुरुके पास जाकरही समझना क्यों कहा? सो कृपा कर बताइये।

गुरु—हे शिष्य! अक्षर बांचा जाता है, अर्थभी

समझमें आता है किन्तु सद्गुरुके उपदेशविना शब्दोंका यथार्थ तात्पर्य्य समझमें नहीं आंता, और निःसन्देह आत्मबोधभी नहीं होता इसपर एक दृष्टान्त कहता हूँ सो सुन।

मन्दिरके गुम्बजका दृष्टान्त।

(ब्रह्मनिष्ट गुरुविना केवल पंचीकरण बांचनेसे ब्रह्मसुखकी अप्राप्ति)

किसी धनवान पुरुषने अपने मनमें विचार किया कि, मेरेपास धन बहुत है इसलिये यदि इस समय उसमेंसे कुछ धन गुप्त करके रख दूँ तो समय पड़नेपर मुझे अथवा मेरे बालकोंको काम आवेगा यह निश्चय करके उसने अपने बनवाये हुए सिद्धेश्वर महादेवके गुम्बजदार शिवालयके गुम्बजमें गुप्त रीतिसे धन रखा। जिस धनको रखते उसे किसीनेभी नहीं

---

१ वेद उदधि विनु गुरुमुख लखे, लागत लौन समान।
गुरुमुख बादर द्वार हैं, अमृत सो अधिकान॥
वि० सा० प्र० त०

देखा। फिर उसने अलग अपनी बहीमें इस प्रकार लिखकर रख दिया कि, "सम्वत १७२५ वि० की सालमें उत्तरायण सूर्य्य, चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीके दिन चार घड़ी दिन चढते सिद्धेश्वर महादेवके मन्दिरके गुम्बजमें पन्द्रह लाख अशरफी रखी है, जब काम लगे तब निकाललेना"। इस प्रकारसे लिखकर बन्दोबस्तसे बहीको रखकर साहुकार निश्चिन्त हुआ। कुछ दिनोंके पश्चात् वह धनवान तीर्थाटन करनेको गया और दैवयोगसे तिर्थोंमेंही उसका अन्त होगया। उससे वह अपने रखे रखाय धन वगैरहको अपने सन्तानोंसे बता नहीं सका। पश्चात उसकी अन्तेष्ठी क्रिया आदिक करके उसके साथके आदमी उसके लडके बच्चों सहित घर लौट आये। समय पाकर उसके लडके बड़े होकर अपने पैत्रिक काममें लगे। व्यापारमें बारम्बार टोटा आनेसे उन्हें धनकी आवश्यकता हुई। फिर उन्होंने ऋण लेकर व्यवहार चलाया। दैवसंयोगसे फिर

व्यापारमें हानि हुई और ऋणका रुपया भी डूब-गया। जब लेनदार लोग तक़ाज़ा करने लगे तब विचारे घबराकर विचारने लगे कि, हमारे बाप दादा बहुत धनवान थे पुराने बही खातोंको देखें यदि उनमें कुछ पता लगे और कुछ लेना लोगोंपर निकले तो काम चले। उसे वसूल करनेका उपाय किया जाय। ऐसा विचारकर वे बहीखाता देखने लगे। देखते देखते जिस बहीमें गुम्बज़वाली पन्द्रह लाख अशरफीकी बात लिखीथी वही बही निकली। देखतेही बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने उसी समय मज़दूरे बुलाकर शिवालयका गुम्बज तोड़वाया। गुम्बज तो टूट गया किन्तु उसमें अशर्फियोंका कुछ पता न लगा। तब वे विचारने लगे कि, क्या बहीमें यह लिखी हुई अशर्फियोंकी बात झूठी हैं? अथवा बातही हमारे समझहीमें नहीं आयी? फिर अपने मित्रोंसे वंचाकर उन्होंसे उसपर विचार किया तब मित्रोंकी सलाहसे दूसरी बहीखातोंको देखना आरंभ किया।

जिसमें भिन्न असामियोंके पाससे उसी वर्षमें पन्द्रह लाख अशर्फियोंकी वसूली मिली और खर्चकी जगहमें ऐसा लिखा मिला कि, "पन्द्रह लाख अशर्फियोंकी तफ़सील अमुक बहीमें गुम्बजके नामे लिखी है। ऐसा तफ़सील सहित पूरा व्यवहार लिखा देखकर सब आश्चर्यमें आये और कहने लगे कि, हिसाब किताब सब ठीक है लिखाभी साफ है फिर क्या कारण है कि, बात झूठी पड़ती है? बहीमें तो बात झूठी लिखी जा सकती नहीं है। इससे जाना जाता है कि, याती गुम्बजमेंसे धन किसीने चुरालिया होगा अथवा रखते समयही कुछ गड़बड़ हुई होगी। इस प्रकारसे संदिग्ध बातोंको सुनकर बिचारे साहुकारके लड़के बड़ी चिन्तामें रहने लगे। जिस तिसको बही दिखाकर हमेंशा पूछा करते किन्तु बहुत दिनोंतक कुछ पता नहीं लगा। अन्तमें अपने कुलके सबसे वृद्ध एक बुद्धिमान पुरुषके पास जाकर

उन्होंने अपना सब वृत्तान्त कहा और बही दिखायी। फिर कहा कि, धन नहीं मिला उसकी उतनी चिन्ता नहीं है किन्तु मन्दिरके शिखर उतरवानेकी बड़ी चिन्ता है। अब हम किसीके सामने मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे हैं। सब यही कहते हैं कि, ये छोकरे ऐसे कपूत निकले कि, बापने तो देवस्थान बनाया और इन्होंने ढहवा दिया। इस प्रकारकी निन्दा सुनकर बहुत दुःख होता है। मरना भला किन्तु ऐसी निन्दित जीवनसे संसारमें रहना अच्छा नहीं। सो यदि आप कुछ उपाय बताओ जिससे हम दुखसे छूटे तौ ठीक है नहीं तो, हमको मृत्युके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं सूझता है। हमारे पास इतना पैसाभी नहीं है जिससे मन्दिरका गुम्बज़ ठीक करवा दें; तिसपर लेनदारोंके तक़ाजोंसे और भी जी दुखी है। साहूकारके लडकोंकी बातको सुनकर उस वृद्ध बुद्धिमान पुरुषने उन्हें संतोष दिलाया और बहीखाता भली प्रकार देखकर उसने उनसे

कहा कि, भाई! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। बहीमें जो कुछ लिखा है सब अक्षर अक्षर सत्य है। किन्तु तुम पहले एक काम करो कि, मैं तुम्हे रुपया देता हूं इससे प्रथम मन्दिरका शिखर जैसा था वैसाही बनवादो। देखना प्रथम जैसा गुम्बज़ बना हुआ था वैसाही बनवाना, उसमें कुछ फेरफार न होने पावे, फिर जब चैत्र सुदी अष्टमी आवे तो उसदिन सवेरेही मेरेपास आना। वृद्धकी बातोंको सुनकर और रुपया लेकर वे अपने घर आये और मन्दिरका शिखर जैसा पहले था वैसाही बनवाकर चैत सुदी अष्टमीका मार्ग देखने लगे। जब चैत सुदी अष्टमीका दिन आया तब उस दिन उपरोक्त वृद्ध पुरुषको अपने घर बुलाकर लाये और उसीकी आज्ञानुसार उस दिन खूब उत्साह मनाया। उत्साह और आनन्दमें जब चार घडी दिन चढ-गया तब उस वृद्ध पुरुपने कहा चलो सिद्धेश्वर महादेवका दर्शन करने चलें। फिर सब मन्दिरमें

दर्शन करने गये। दर्शन करके प्रदक्षिणा फिरते फिरते गुम्बजकी छाया दिखाकर उस वृद्ध पुरुषने कहा कि, भाई ! मन्दिरका शिखर यह है, यहांही तुम्हारी पन्द्रह लाख अशरफ़ी गड़ी है। यहांही खोदनेसे वह मिलेगी। फिर तो साहूकारके लड़कोंने मजदूर बुलाकर उसी जगहको खुदवायी और वहांसेही अशरफी निकली। फिर तो अशर्फियोंको पाकर साहूकारकी सन्तान फिरसे धनवान होकर सुखी होगयी।

हे शिष्य ! देख बहीमें जो कुछ लिखाथा सो झूठा नहीं था। अक्षरभी स्पष्ट था, सबही बांच सकते थे उसका अर्थ भी सबही लोग समझ सकते थे, गुम्बजमेंही अशर्फियाँ भी थीं किन्तु किसी दूसरेसे अशर्फियोंका पता नहीं लगा। क्योंकि, वांचनेको तो सबही बांचते थे किन्तु, "चैत्र मासकी अष्टमीके दिन चार घडी दिन चढ़े मन्दिरके शिखरमें अशरफी रखी है" इस वाक्य-

का अभिप्राय किसीकी समझमें नहीं आताथा। उस वृद्ध पुरुषने विचार किया कि, पन्द्रह लाख अशर्फियां मन्दिरके उपरी गुम्बजमें तो रखी जा-सकती नहीं हैं, क्योंकि ऐसे छोटे शिखरमें पन्द्रह लाख अशरफीका अंटना असम्भव है। इस लिये भूमिमें शिखरकी छायामें अवश्य रखी होगी। क्योंकि, जैसा बहीमें लिखा है उसी समय मन्दिरके शिखर-की छाया जिस स्थानपर जावे उसीको मन्दिरका शिखर समझना चाहिये। यदि लिखे हुए समयके विरुद्ध किसी दूसरे महिने अथवा घडी तिथिमें छायाके शिखरमें भी देखा जायगा तो कदापि नहीं मिलेगा। इस प्रकारसे उस लेखके अभिप्रायको जानने-वाला बुद्धिमान वृद्ध पुरुप मिला तबही यथार्थ अभिप्राय समझमें आया और धन मिला।

उपरोक्त कथाका सिद्धान्त।

इसी प्रकारसे संस्कृत अथवा प्राकृत भाषा आदिके वेदान्तके ग्रन्थ बाँचने भी जानता हो,

उसका शब्दार्थ भी समझता हो कि, परमात्मा सर्वत्र पूर्ण है, देहत्रयका द्रष्टा है, अवस्थात्रयका साक्षी है, पंच कोशातीत है; सच्चिदानन्दरूप है। और यह बात सत्यभी है क्योंकि, देहरूपी शिखरमें सच्चिदानन्द आत्मारूपी धन है और श्रुति स्मृति शास्त्रोंरूपी बहीमें लिखाभी है तथापि ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुद्वारा शास्त्रोंका तात्पर्य्य जानेविना आत्मधनकी प्राप्ति कदापि नहीं होती है।

ब्रह्माके पुत्र नारदमुनि ऋग्वेद आदि चारों वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदि सर्व विद्याके ज्ञाता थे किन्तु आत्मज्ञान न होनेसे महान शोक सागरमें डूब रहते थे। अन्तमें जब दुखी होकर सनत्कुमार गुरुकी शरणमें गये तब उनके उपदेशसे निरतिशय सुखरूप पूर्ण आत्माको अपरोक्ष जानकर दुःख रहित हुए। यह कथा छांदोग्य उपनिषदमें विस्तारसे निरूपण किया है।

इसलिये कहा है कि,–

"सद्गुरु मुखे. समजी लेजो।
तो ब्रह्म सुख पामे आजो॥"

प्रथम कह आये हैं कि, "ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाकर उनके उपदेशविना, केवल अपनी बुद्धिके विचारसे आत्माका साक्षात अपरोक्ष बोध नहीं होता है"। इसलिये ऐसे गुरुकी शरणमें जाकर उनके कियेहुए ब्रह्मविद्याके उपदेशको मुमुक्षु निश्चय करके अपने हृदयमें धारण करे। अब वद सद्गुरुका उपदेश निरूपण करते हैं।

चौपाई

मन निश्चल करि धारणा धरे। श्रवण मनन निदिध्यासन करे॥ तो साक्षात्कार तुं पोते भाई। एमा संदेह रहे न काई॥

टीका—हे शिष्य! मुमुक्षु पुरुषको गुरु जो उपदेश करे उस उपदेशको शिष्य अपना मन निश्चल

करके हृदयमें धारण करे—सो मन निश्चल रखने-के विषयमें दृष्टान्त कहते हैं सो सुन—

गुरुका उपदेश एकाग्रचित्तसे धारण करनेके विषयमें चार दृष्टान्त ।

(१)

किन्ही दो पड़ोसियोंमें परस्पर ईर्षा द्वेष चल रहा है । और उनमेंसे जब कोई एक पुरुष अपने किसी दूसरे मिलनेवालोंसे अपने पड़ोसीके विषयमें कुछ निन्दास्तुतिकी बात करता है; तो उस समय दूसरा पड़ोसी, अपने विषयमें बात होनेका, समाचार पातेही, घरकी खिड़की अथवा किसी ऐसे स्थानमें; जहांसे पड़ोसीकी बात भली प्रकार सुन पड़ती है अपने पडोसीसे छिपकर बात सुननेके लिये बैठता है। बात सुननेके समयमें उसे धूप आदिकी जितनी तकलीफ़ होती है सब सह लेता है किन्तु मनको बातकी ओरसे जराभी हटने नहीं देता; वरन सब बात एकाग्रचित्त होकर सुनता है और

स्मरण रखता है। समय पड़नेपर उसकी स्मृतिभी उसको होती है।

इसी प्रकार मुमुक्षुओंकोभी उसी पुरुषके समान सद्गुरुके उपदेशके सुननेमें एकाग्रचित्त रहना चाहिये। और शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा, मान, अपमान-आदि सहन करते हुए, गुरुके उपदेशमेंसे अपने मनको दूसरी जगह नहीं जाने देना चाहिये।

(२)

जिस प्रकार धनकी इच्छावाला कोई पुरुष धन प्राप्तिके लिये नानाप्रकारका उपाय करता है। उसे किसी पुरुषने कहा कि, मैं तुझे धन मिलनेका उपाय बतलाताहूँ यदि तूं उसे एकाग्रचित्त होकर सुनेगा और उसीके अनुसार करेगा तब तुझे बहुत धन मिलेगा। उसकी बातको सुनकर धन मिलनेकी इच्छावाला पुरुष जिस प्रकार एकचित्त होकर उसके बताये हुए उपायको सुनता है। उसी प्रकार—अथवा—

(३)

जिसप्रकार स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छावाले पुरुषको, कोई स्वर्ग मिलनेका उपाय बतलाता हो, तो जिस-प्रकार वह स्वर्गेच्छु एकाग्र मनसे उसकी बातको हृदयमें धारण करता है। उसी प्रकार—अथवा—

जय पानेकी इच्छावाले परुषको यदि कोई जय पानेकी युक्ति बतावे तो जिस प्रकार वह उस उपायको ध्यान देकर सुनता है। उसी प्रकार—

मुमुक्षु पुरुप सच्चिदानन्द आत्माके बोध होनेके लिये सद्गुरुके उपदेशरूप वचनोंको एकाग्र मनसे धारण करे और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुद्वारा सुने हुए वेदान्त वाक्यका मनन तथा निदिध्यासन करे।

(४)

जिसप्रकार वीणासहित गायनको सुनकर बनके हिरण सब सुधिको विसराकर केवल गायन सुननेमें निमग्न होते हैं। उसी प्रकार गुरुमुखसे निकले हुए तात्पर्यसहित वेदान्त वाक्यका श्रवण करे। पश्चात्

सुने हुए गुरु उपदेशको युक्ति तथा दृष्टान्तपूर्वक जिसप्रकार संशय नाश होवे उसीप्रकार वारम्वार मनन करे।

जिसप्रकार गाय चरकर आनेपर निवृत्तिसे बैठकर पागुर करती है उसीसे उसकी तृप्ति होती है। उसी प्रकार वेदान्त श्रवण करनेके पश्चात् एकान्तमें खूब मनन करनेसे दृढ बोधरूपी तृप्ति होती है।

जिसप्रकार बादाम, पिस्ता, शक्कर और अन्न आदि पदार्थोंको जितनीही चबाकर खाओ उतना-ही उसमें स्वाद मालूम होता है और उसका पाचन-भी उत्तम रीतिसे होता है जिससे शरीर पुष्ट होकर दृढ होता है। उसीप्रकार वेदान्तको वारम्वार मनन करनेसे अभेद तात्पर्यकी समझरूपी स्वाद मिलता है और आत्मज्ञान पुष्ट होता है।

इसीप्रकार मनन करनेके पश्चात् सजातीय प्रत्यय-का प्रवाह और विजातीय प्रत्ययका तिरस्काररूप निदिध्यासन करना चाहिये जिससे शुद्ध आत्मा-

नुभव प्राप्त होवे । सजातीय प्रत्ययका प्रवाह यह है कि मैं सत्, चित्, आनन्द, कूटस्थ, अक्रिय, अजर, अमर, पूर्ण, नित्य, शूद्ध, बुद्ध, और मुक्तरूप आत्मा हूं । उसीप्रकार विजातीय प्रत्ययका प्रवाह यह है कि,—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र मैं नहीं, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी मैं नहीं, कर्ता, भोक्ता, पुरुष, स्त्री, बालक, युवा, वृद्ध, सुखी, दु:खी, मैं नहीं । इसप्रकारसे विचारद्वारा वारम्वार देहाध्यासका तिरस्कार करना ।

इसप्रकारसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन करनेसे हे शिष्य ! तुझे ऐसा ज्ञान दृढ होगा कि, "मैं आत्मा, निर्विकार, शुद्ध, ब्रह्मरूप, हूं" ऐसे साक्षात्कार होनेसेही तू निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त होगा ।

पूर्व कहे हुए दूसरी चौपाईमें शिष्यने प्रश्न किया था कि, "जन्ममरण केम टलशे महारो" यद्यपि गुरुने शिष्यके उसी प्रश्नका उत्तर "सद्गुरु कहे स्वस्वरूप जान" इत्यादि चौपाईयोंमें स्पष्ट दे दिया है

त्तथापि औरभी स्पष्ट करके समझानेके लिये आगे "अहं ममेति" अर्द्ध श्लोकके व्याख्यानसे विस्तार-पूर्वक समझाते हैं।

गुरु—हे शिष्य ! तूने प्रथम पूछा था कि, "मेरा जन्ममरण कैसे टलेगा ? अर्थात् मेरा बन्धन कैसे निवृत्त होगा?" सो यह नियमकी बात है कि, "संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने" अर्थात् जो जिसके स्वरू-पको जानता है, जो जिसको भलीप्रकार परखता है वही उसका संग्रह अथवा त्याग कर सकता है। और जबतक जिसके स्वरूपकोही नहीं जाना है तबतक उसकी निवृत्तिका उपाय कैसे हो सकता है। जिसप्रकार किसी रोगके यथार्थ निदानको जाने विना उसकी परीक्षा नहीं की जा सकती है उसी प्रकार तूं जबतक बन्धनका स्वरूप नहीं जानेगा तब-तक उसकी निवृत्तिका उपाय कैसे करेगा। इसलिये मैं पूछता हुं कि, "तूने अबतक अपने बन्धनको पहचाना है ? या नहीं पहचाना है ? ।"

शिष्य—हे भगवन्! बन्धन क्या है? वह कैसा होता है? कौन किस प्रकारसे बन्धन करता है? उसकी निवृत्तिका उपाय क्या है? इनमेंसे एकका भी स्वरूप मैं नहीं जानता। इसलिये कृपाकर आपही इनके स्वरूपको समझाकर मेरा दुःख निवारण कीजिये। हे प्रभु! मैं आपकी शरण हूं। इसपर गुरु कहते हैं।

॥ श्लोकार्ध ॥

अहं ममेत्ययं बन्धो, नाहं ममेति मुक्तता॥

अर्थ—"मैं देह हूं और देहादिक मेरा है" इस प्रकारके अध्यासका नामही बन्धन है। यही बन्धनका स्वरूप है। और यह बन्धन स्वरूपके अज्ञानसे होता है इसलिये स्वरूपका अज्ञानही बन्धनका कारण है। और "यह मैं नहीं, न यह मेरा है" इसप्रकारकी दृढताद्वारा देहादिकमेंसे अहंता ममताकी निवृत्तिकोही मुक्ति होना कहते हैं।

शिष्य–हे कृपालो ! यह अहंता ममता किस प्रकार निवृत्त होवे ?

गुरु–हे शिष्य ! साधनद्वारा अहंता ममता निवृत्त होता है ।

शिष्य–हे भगवन् ! मैं जो २ साधन करता हुं उस २ में तो "मैं देह और मेरा देह" इसप्रकारकी अहंता ममता बनीही रहती है मिटती नहीं है । क्योंकि, त्याग करनेसे मैं त्यागी हूं, योग करनेसे मैं योगी हूं, तप करनेसे मैं तपस्वी, मैं तप करता हूं, इत्यादि सर्व साधनोंमें मैं देह और मेरा देह ऐसी अहंता ममता तो बनीही रहती है । किन्तु आप कहते हैं कि, अहंता ममता साधनसे मिट जाता है सो किसप्रकारसे है सो कृपा कर स्पष्ट समझाकर कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! तूने जिन साधनोंका वर्णन किया वे अहंता ममता के निवृत्त करनेवाले साधन नहीं है वरन उनसे तो अहंता ममता और भी दृढ

होता है। अहंता ममता के निवृत्त करनेका उपाय मात्र विवेक और विचार है, इनके विना जितने साधन हैं वे सब बन्धनके कारण हैं। क्योंकि, पुरुष जिस जाति और कुलवर्णमें जन्म लेता है, जन्मसे उसका दृढ अध्यास उसके अंतःकरणमें जमा होता है। फिर अविवेकसे किसी पंथका वेष धारण करता है तो उसका भी अभिमान होता है। प्रथम तो एकही अभिमान था अब द्विगुण होगया। क्योंकि जब तक पुरुष गृहस्थाश्रममें रहता है तब-तक नम्रतासे किसी महात्माकी सेवाभी करता है। किन्तु वैरागीका वेष बनानेपर उसके मनमें बड़ा भारी अभिमान हो जाता है। वह अपने मनमें सदा यह चाहता रहता है कि, मैं त्यागी हूं मुझे सब कोई माने और सब कोई मेरा आदर सत्कार करे। प्रथमके समान विद्वान् महात्माकी सेवा और उनकी वाणीसे उसकी श्रद्धा एकदम उठजाती है क्योंकि मूर्खतासे अविवेकी त्यागी अपनेको याता

उनसे बड़ा समझता है या उनके तुल्य मानता है। इसप्रकारसे उसका अभिमान बढ़कर उसके दुःखका कारण होता है। इसके ऊपर "बिलाड़ी फेंकते ऊंठ पैठे" की एक कहावता है जिसको दृष्टान्तसे स्पष्ट तुझे समझाता हूं तू ध्यान देकर सुन।

विचार विना त्यागसे अभिमानकी वृद्धिका दृष्टान्त।

किसी घरमें कहीं एक बुढ़िया रहती थी। संयोगसे एक बिल्ली उसकी अंगनाईमें मर गयी। वह उस मरी बिलाईको बाहर फेंकनेके लिये टोकरीमें डालकर गॉवके बाहर ले गयी। घरसे निकलते समय अन्दरके घरका द्वार तो बन्द कर दिया किन्तु बाहरका द्वार भूलसे खुला छोड़गयी। जबतक बिलाईको फेंक स्नानादि करके बुढिया फिरकर घर आवे तब तक एक रोगी ऊंट चलता चलता उसीके द्वारपर आकर गिरा और मरगया। बुढिया फिरकर आनेपर ऊंटको मरा अपने द्वारपर पड़ा देखकर

चिन्ता करने लगी "अरे मैं बिलाई फेंकने गयी इतनेमें ऊंट आकर मरगया" हाय अब यह किस-प्रकार फेंका जायगा। बिलाई तो हलकी थी उसको तो मैंही फेंक आयी किन्तु यह इतना बड़ा भारी ऊंट मुझसे कैसे उठाया जायगा। जिस-प्रकार बुढियाको बिलाई फेंकने जानेमें ऊंटभी गले पड़ा—इसी प्रकार—

विचार विवेक विना जो देहाभिमानको छोडनेके लिये गृहस्थ रूप बिलाईका त्याग करते हैं तो उन्हें त्यागका अभिमानरूप ऊंट गले पड़ता है। इसलिये उत्तम जिज्ञासा विना और अधिकार विना केवल वेष धारण करनेसे अथवा सकाम जपादि अन्य साधनोंसे अहंता ममतारूप बन्धनकी निवृत्ति कदापि नहीं होती है।

शिष्य—हे भगवन्! जब जपतपदानादि साध-नोंसे अहंता ममताकी निवृत्ति नहीं होती है तब

जिन साधनोंसे इसकी निवृत्ति होती है सो कृपाकर कहिये ?

गुरु– हे शिष्य ! विवेकादि साधन सम्पन्न होकर, ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणको प्राप्त हो तथा सद्गुरुके उपदेशद्वारा आत्मा अनात्माके विचारसे प्राप्त स्वरूपके ज्ञानसे अहंता ममताकी निवृत्ति होता है। उस ज्ञानका स्वरुप ऐसा है कि, "यह देह पंचभूतका कार्य्य है, इसलिये अनात्मा है और घटके समान दृष्य है। जिसप्रकार घटद्रष्टा घटसे भिन्न है उसी प्रकार देहका द्रष्टा मैं देहसे भिन्न हूँ। देह जड़ है मैं चैतन्य हूँ; देह विकारी है मैं निर्विकार हूँ; देह क्रियवान, संगवान और मलिन है, मैं अक्रिय असंग और निर्मल हूँ। जब मैं देह नहीं हूँ तब देहमें कल्पित ब्राह्मणादि चार वर्ण और ब्रह्मचर्य्यआदि चार आश्रम, तथा बाल, यौवन, वृद्ध, स्थूल, कृश, ह्रस्व, दीर्घ, श्याम, गौरआदि देहके धर्मभी मुझ आत्मामें नहीं हैं"।

इसप्रकारके विचारद्वाराही देहमेंसे अहंता ममता निवृत्त होता है। देवदत्त, विष्णुदत्त इत्यादि नामभी देहसे व्यवहार सिद्ध करनेके लिये कल्पित हैं आत्मामें नहिं हैं, तथापि आत्माको देहसे जुदा न जाननेके कारण देहके कल्पित नामको आत्माका नाम करके अभिमान किया है उसकोभी विवेक पुर्वक युक्तिसे निवृत्त करना। जिसप्रकार किसीने पूछा "तू कौन है?" तब तू ऐसा कहता है कि, "मैं देवदत्त हूं"। किन्तु विचार करके देख कि, तेरे स्थूल शरीरका यह देवदत्त नाम, इस देहके जन्म होनेके दशवें या बारहवें दिन पड़ा था और जब यह देह जन्मा तब किसीने इसको देवदत्तके नामसे नहीं पुकारा था। फिर यदि कोई कहे कि, इस देहमें देवदत्त कौन है? तब हाथसे ऐसा बतलाया नहीं जाता कि, यह देवदत्त है। क्योंकि, जहां हाथ लगावेगा वहां शिर, मुख, कन्धा, पीठ, पेट, कमर, जंघा, घुटना और पग इत्यादि मिलेगा, देवदत्तका

कहीं पताभी नहीं मिलेगा। इस विचारसे जब देहका नाम देहमेंही सिद्ध नहीं होता है तब देहसे भिन्न देहके द्रष्टा आत्मामें देवदत्त नामका कैसे पता-लग सकता है ?।

शिष्य—हे गुरो ! मैं आत्मा देहसे भिन्न किस प्रकार हूँ ? सो आप कृपा करके जिस प्रकार मैं स्पष्ट समझ सकूँ उसी प्रकार कहिये।

गुरु—हे शिष्य ! विचारकर देख कि—तू जो इस प्रकार कहता है कि, अपने पूर्व जन्मोंके किये हुए कर्मोंको मैं इस जन्ममें भोगरहा हूँ और इस जन्मके किये हुए कर्मोंको आगामी जन्ममें भोगूँगा। तो देख कि, यह तेरा स्थूल देह नतो प्रथम थी न पीछे रहेगी। अभी माताके पेटमेंसे उत्पन्न हुई है किन्तु कर्मोंका करनेवाला तू तो उसके पूर्वभी देहसे कोई भिन्न ही था और जब इस देहका नाश हो जायगा तब भी देहमें किये हुए कर्मोंका

भोक्ता तू इससे भिन्न ही रहेगा। इससे "यह स्थूल देह तू नहीं है" ऐसा तुझे अनुभव होता है कि, नहीं ?

फिर देख कि, तू कहता है कि, मेरी देह है, मेरा हाथ है, मेरा पग है, मेरा शिर है, इत्यादि किन्तु मैं देह, मैं हाथ, मैं पग, मैं शिर इत्यादि नहीं कहता। जिस प्रकार मेरा घर, मेरा बंगला, मेरा बाग इत्यादि सब वस्तुओंको अपना कहा जाताहै, किन्तु मैं घर, मैं बंगला, मैं बाड़ी इत्यादि कभीभी नहीं कहाजाता। इससे "मेरा है" इस प्रकार कहनेवाला पुरुष उन सब पदार्थोंसे अलग है, यह स्वयम् सिद्ध बात है। उसी प्रकारसे देहको अपना कहनेवाला तू आत्मा देहसे भिन्न है।

इस पर एक दूसरा दृष्टान्त कहता हूँ सो सुन।

देहसे आत्माकेभिन्न होने विषयक देह तथा घरकी सादृष्यताका दृष्टान्त।

जिस प्रकार घरमें धरन, तडक, खम्भा, खिड़की, द्वार इत्यादि होतेहैं। ईंट, पत्थर अथवा गिलावासे

चुंधी हुई भीत होती है, उसपर सफेद, काला, लाल इत्यादि रंग किया हुआ होता है। छप्पर फूस और मिट्टीका हो तो उसपर छोटी छोटी घासभी उगती है। उस घरमें रहनेवाला पुरुष जैसे घर नहीं है वरन घरसे भिन्न है। वह अपनेको घर कहताभी नहीं है। उसी प्रकार इस देहरूपी घरमें हड्डियाँ तडक घरन और बल्लियाँ हैं, हाथ पगरूपी खम्भा-से यह खड़ाहै। छोटी छोटी हड्डियाँरूपी ईंट, पत्थर है, मांसरूपी गारासे सब जुटकर यह देहरूपी घर खड़ा है। गोरापन, कालापन इत्यादि रंग है। आंख, कान, नाक, मुख इत्यादि द्वार तथा खिड़की है। रोमरूपी घास जमीं हुई है। इस प्रकारके देहरूपी घरका द्रष्टा आत्मा तू इस घरसे भिन्न है।

इसलिये उपर्युक्त कहे हुए विचारद्वाराही देहाभि-मानरूप अहंता ममता मिटता है। इसकेसिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

शिष्य—हे स्वामिन्! आपने जो उपदेश

किया उसको विचार करनेसे "मैं देह नहीं हूं" ऐसी अहंताकी तो निवृत्ति होती है किन्तु "देह मेरा है" ऐसी ममता तो नहीं छूटती दृष्टान्तसे भी यही बात अनुभवमें आती है। जैसे घटका देखनेवाला अपनेको घट नहीं मानता किन्तु "घट मेरा है" यह तो कहताही है। जिस प्रकार घरमें रहनेवाला अपनेको घर नहीं मानता किन्तु अपना घर तो मानताही है। उसी प्रकार देहका द्रष्टा मैं नहीं किन्तु "यह देह मेरा है" ऐसा कहनेसे तो ममत्व रहताही है। इसलिये यह ममत्वभी जिस उपायसे नष्ट हो जावे सो उपाय दया करके कहिये।

गुरु—हे शिष्य ! जिस प्रकार तू देह नहीं है उसी प्रकार देहभी तेरा नहीं है। क्योंकि, यह देह तो पंचभूतोंका है किन्तु तू अज्ञानसे इसको अपना कहता है। जैसा घड़ा मिट्टीका है और तू उसे अपना कहता है। जिस प्रकार घर लकडी, पत्थर, चूना इत्यादिका है और उसे तू अपना कहता है इसी प्रकार

हाड़, मांस, त्वचां, नाडी आदिसे बने हुए भौतिक शरीरको तूँ अपना कहता है; यह तेरी बडी भूल है। उत्तम जातिवाला तो हाड़ चामको अपना कदापि नहीं कहेगा। किन्तु तू भूलसे कहता है कि, हड्डी ओर चमडे की देह मेरी है और मैं देह हूँ। यही मानना तेरे बन्धनका कारण है। और यह देह पंचभूतकी है जिसको तू अपनी कहता है इससे पंचभूतभी तुझे अवश्य दुःख देंगे। जब लौकिकमें झूटे भूतके चढनेसे लोग दुःख पाते हैं तब यह पंचमहाभूतोंकी देहमें तू ममता करेगा तो ये पंचभूत तुझे कब छोड़नेवाले है ? अन्यकी वस्तुमें ममत्व करनेवाला कभी दुःखके सिवाय सुख नहीं पाता है। इसके उपर एक दृष्टान्त कहताहूं सो तू ध्यान देकर सुन।

दूसरेकी वस्तुमें ममत्व करनेसे बन्धनकी प्राप्तिका दृष्टान्त।

किसी धनवान पुरुषको यज्ञ, ब्राह्मणभोजन अथवा

स्वजातिआदि कुछ शुभकर्म करनेकी इच्छा हुई। किन्तु अपने घरके सामने स्थानका संकोच होनेसे उसने पंचायती स्थानमें अपना कार्य करनेका विचार किया। फिर उसने पंचोंसे स्थान मांगकर सकुटुम्ब उसमें जाकर निवास किया। उक्त स्थानमें रहनेपर कई दिनोंके पश्चात् कुछ लोभादिके आवेशसे विचार किये हुए शुभकार्य्यके करनेका विचार उसने छोड़ दिया। उस स्थानमें जगह बहुत होनेसे उसे वहां बहुत सुख मिला इससे वह बहुत दिनोंतक उसी पंचायती स्थानमें निवास करता रहा। अब उसकी इच्छा वहांसे निकलनेकीभी नहीं होती। इस प्रकारसे बहुत दिन बीत जानेपर पंचोंको ध्यान आया। तब उन्होंने किसी आदमीके द्वारा उपर्युक्त धनवान पुरुषको स्थान खाली करदेनेकी बात कहलवायी। किन्तु वहां विशेष सुख मिलनेके कारण उस धनवा-नने पंचोंकी आज्ञाकी कुछ परवाह न करके स्थानको खाली नहीं किया।

उस धनाढ्य पुरुषकी प्रमादको देखकर पंचोंने मिलकर एकस्थानमें उसे बुलाया किन्तु वह नाना-प्रकारका बहाना करके उनके पासभी नहीं गया, वरन उलटा कहने लगा कि, यह स्थान मेरा है इसमें पंचोंका क्या लगता है ? उसकी बहकी बहकी बातोंको सुनकर पंचोंने क्रोध न करके ऐसा विचार किया कि, अच्छा अभी कुछ दिनोंतक उसे औरभी रहने दो फिर आपही वह स्थान हमलोगोंके स्वाधीन कर देगा।

इसप्रकार क्षमा करनेपरभी जब बहुत दिनोंतक उसने स्थान पंचोंके आधीन नहीं किया तब तो पंचोंने कचहरीमें नालिश करके उसको कचहरीमें पकड़वा मंगाया। न्यायाधीशने उससे कहा कि, तू पंचोंका स्थान उनके स्वाधीन क्यों नहीं करता है ? तब उसने कहा कि, स्थान मेरा है उसमें पंचोंका कुछभी लगता नहीं हैं। न्यायाधीशने कहा कि, यदि स्थान तेरा है तो उसके प्रमाणके लिये तेरेपास कुछ

लिखत हो तो हाजिर कर। उसकेपास कुछ प्रमाण न होनेसे वह उलटा सीधा बकने लगा; इससे न्यायाधीशने उसे कैद करके हुक्म दिया कि, जबतक यह पंचोंका स्थान उनके स्वाधीन न करे तबतक इसे कैद रखा जावे।

उपर्युक्त दृष्टान्तपर सिद्धान्त।

जीवरूप धनवान पुरुषको मोक्षरूपी शुभकार्य्य सम्पादन करनेकी इच्छा हुई किन्तु अपने देवगन्धर्व आदि शरीरोंमें भोगकी आसक्तिसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति असम्भव जानकर, तथा पशुपक्षीआदि देहमें अतिमूढताके कारण आत्मज्ञानकी अप्राप्ति समझकर, मोक्षद्वारभूत इस मनुष्य शरीरको पंचमहाभूतोंसे मांगलिया। पश्चात् इसमें आकर वास करनेपर इस देहमेंभी अनेक विषयोंकी तृष्णा तथा आसक्तिरूप विघ्नके संयोगसे मोक्षरूपी कार्य्य सम्पादन करना भूल गया। वरन इसने उलटाही ऐसा मानलिया कि, यह देह मेरी है। तब पंचभूतोंने शास्त्ररूपी

दुभाषियाद्वारा समाचार भेजा कि, यह देह पंचभूतका है इसलिये इसमें ममत्व और अभिमान मत करना। नित्य शास्त्रोंद्वारा उपदेश सुनते हुऐभी विषयासक्त जीव, शास्त्रकी कुछ परवाह न करके, सदा देहमें ममत्व करताही जाता है। यदि इसे इसका कोई स्नेही, सत्पुरुष, सन्मित्र वेदान्त श्रवण करनेका उपदेश करता है तो उलटा सीधा बहाना करके समय न मिलने इत्यादिकी बात कहकर उल्टा उसके उपदेशका अनादर करता है। इसप्रकार पंचभूत ऐसा विचार करके—कि, आज नहीं तो चार दिन पीछेही आत्मतत्त्वका विचार करके मेरी देह मुझे पीछे सौंप देगा,—शान्त बैठते हैं। इसपरभी जब जीव कुछ ध्यान नहीं देता है तब पंचभूत यमराजके पास नालिशकरके इसके ऊपर अभियोग उपस्थित करते हैं कि, इस अज्ञानी जीवने, मेरे कार्य्यरूप मनुष्य देहको, इसकेद्वारा मोक्ष सम्पादन करनेके लिये, हमसे मंगनी लीथी; किन्तु अबतक बहुतबार क्षमा करने

और चितानेपरभी इसने न तो मोक्ष सम्पादन किया न मेरी देह हमें बापस दियी। अब यह इस देहका मालिक बन बैठा है और हमको अंगुठा दिखाता है। इससे हे यमराजा! आप न्यायपूर्वक मेरी देह मुझे दिला दीजिये। पंचभूतोंकी नालिश सुनकर जब यमराज अपना दूत भेजकर जीवको बुलाता है तब इधर उधरकी बात कहकर पंचोंके आगे जानेसे जैसा बहाना किया करता था वैसा तो किया जाता नहीं है; किन्तु स्त्रीपुत्रादि सम्बन्धियोंको रोता छोड़कर आप यमदूतोंके साथ यमलोकमें जाता है। तब यमराज कहता है कि, रे अज्ञानी जीव! यह पंचभूतका देह तू पंचोंको क्यों सौंपता नहीं है उस समय अज्ञानी जीव कहता है कि, यह देह मेरी है इसमें पंचभूतोंका क्या लगता है ? तब पंचभूत प्रमाणसे सिद्धकरके बतलाते हैं कि, यह स्थूल और सूक्ष्म देह मेरी है। साक्षीके लिये चार बेद छः शास्त्र और अठारह पुराण इत्यादि सत्शास्त्रोंको लाकर

खड़ाकर देते हैं किन्तु अज्ञानी जीव किसी प्रमाणसेभी देहमें अपना स्वामित्व सिद्ध नहीं कर सकता है। इसलिये यमराजा उस अज्ञानी जीवको पराई वस्तुपर जबरदस्ती स्वामित्व स्थापन करनेके दोषमें चौरासी लक्ष योनिरूप कारागारमें डाल देता है। और आज्ञा करता है कि, जबतक पंचभूतोंकी देह पंचभूतोंको न सौंपे तबतक इस कैदखानेमेंसे निकलने नहीं पावेगा।

इसलिये हे शिष्य ! पंचभूतके शरीरको अपना न जानकर पंचभूतोंका जानकर उन्हींको सौंपदे। तात्पर्य्य कि, "देह दृश्य है, इसलिये मैं देह नहीं हूँ वरन वह पंचभूतकी है इससे मेरीभी नहीं है।" इसप्रकारका विवेक करके देहमेंसे अहंता ममता छोड़ दे।

शिष्य—हे गुरु ! आपने कहा कि, यह देह पंचभूतकी है, इसका तू द्रष्टा है, इसलिये देह तू नहीं है और देह पंचभूतोंका होनेके कारणसे तेरी नहीं है। यह सब बात तो मैंने सुनी किन्तु पंच-

भूत किसे कहते हैं उन्हेंही मैं नहीं जानता इसलिये आप प्रथम पंचभूतोंका नाम बतलाइये।

गुरु—हे शिष्य! सुन—आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वीको पंचभूत कहते हैं।

शिष्य—हे गुरो! यदि यही पंचभूत हैं तो आपके कहे अनुसार तो मेरे शरीरमें इनका कुछभी भाग देखनेमें नहीं आता तब "यह देह पंचभूतकी है" इस बातको मैं कैसे मान लूँ?

गुरु—हे शिष्य! विचार करके देख! इस शरीरमें जितने भागोंमें कठिनता है वे तो पृथ्वीके भाग हैं। जितने भागोंमें द्रवता है वे जलके हैं। जितना भाग गर्म है वह तेजका है। चलना फिरना आदि क्रिया वायुसे होती है, केवल वे क्रिया मात्र वायुकी हैं। और शरीरमें जितना पोल है सो सब आकाशका भाग है।

शिष्य—हे गुरो कृपालो! आपने संक्षेपसे यह तो बतलादिया कि, अमुक अमुक भाग अमुक

अमुक तत्त्वका है। किन्तु मुझे स्पष्ट समझ नहीं पड़ा। इसलिये आप दया करके पंचभूतोंके भिन्न भिन्न तत्त्वोंका वर्णन विस्तारसे सुनाकर मुझे स्पष्ट समझा दीजिये कि इस स्थूल शरीरमें पंचभूतोंके कौन कौन अंश हैं ?

अब गुरु शिष्यको भिन्न २ स्थूल देहके तत्त्वोंको समझाते हैं।

स्थूल देहके तत्त्वोंका कोष्टक।

आकाशका	वायुका	तेजका	जलका	पृथ्वीका
काम	चलन	क्षुधा	शुक्र	अस्थि
क्रोध	वलन	तृषा	रक्त	मांस
शोक	धावन	आलस्य	लार	त्वचा
मोह	प्रसारन	निद्रा	मूत्र	नाड़ी
भय	आकुंचन	कान्ति	पसीना	रोम

गुरु–हे शिष्य !

आकाशके पांच तत्त्व हैं। काम, क्रोध, शोक, मोह और भय।[1]

ये सब हृदयाकाशमें उत्पन्न होते हैं इसलिये आकाशके हैं। इनको तू जानता है इसलिये ये तत्त्व तू नहीं है। और ये आकाशके हैं इसलिये तेरे नहीं हैं। तू इनका द्रष्टा है ये पांचों तत्त्व बन्धनद्वारा प्रत्यक्ष दुःखके देनेवाले हैं इसलिये इनका त्याग तू शीघ्र करदे। देख !

काममें आसक्त होनेसे रावण कितना दुःखी हुआ। उसका राज्य पाट गया, सर्व नाश हुआ। इसलिये कामका सदा त्याग करना।

क्रोध राक्षससेभी अधिक बुरा है। क्योंकि, राक्षस तो दूसरेका रक्त पीता है किन्तु क्रोधमें आया हुआ पुरुष अपना तथा पराया सबका लोहू

---

१ काम क्रोध अरु शोक हैं, भय व मोह सह भाग।
नभकी पांचो जानिये, नाहिं तो में कछु लाग॥

पीता है। राक्षस तो केवल अपने कर्ममें रातकोही प्रवृत्त होता है किन्तु क्रोधी तो दिन और रात दोनो समय नाचा करता है। राक्षस तो दूसरोंको भय और त्रास देता है किन्तु आप भय नहीं पाता परन्तु क्रोधी तो आपभी भय पाता है और दूसरोंकोभी भय तथा त्रास देता है। इसलिये क्रोध राक्षससेभी अधिक दुःखदायी हैं। इसकारण क्रोध को सदा त्याग करना।

इसी प्रकार मोह और भयसेभी दुःख होता है सो प्राणीमात्रको अनुभव सिद्ध है इसलिये उनका भी त्याग करना। इनमें अहंता ममता भूलकरभी न करना।

यद्यपि ये कामादिक सूक्ष्म देहके धर्म हैं स्थूल देहके नहीं किन्तु इनका आवेश प्रत्यक्ष स्थूल शरीरमें देखा जाता है इसलिये इनकोभी स्थूल शरीरका तत्त्व कहा है। इसीप्रकार—

वायुके पांच तत्त्व हैं। चलना, वलना, दौड़ना, फैलना और संकोचना। किसी २ स्थानमें वलनेकी जगह उठना लिखा है।

इन पांचों तत्त्वोंको तू जानता है इसलिये यह तू नहीं है। ये वायुके हैं इसलिये तेरे नहीं हैं॥ वायुके विना चलना फिरना आदि क्रिया हो नहीं सकती इसलिये इन्हें वायुका कहा है। तू इन सबोंका साक्षी है। तू द्रष्टा है। द्रष्टा दृश्य कैसे होगा? ऐसा जानकर तू इनमेंसे अहंता ममताका त्याग कर। इसीप्रकार।

तेज (अग्नि) के पांच तत्त्व हैं। क्षुधा (भूख लगना), तृषा (प्यास लगना), आलस्य, निद्रा तथा कान्ति।

---

१ वल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच।
देह बढ़े सो जानिये, वायु तत्त्व है सोच॥
२ निद्रा कान्ती आलकस, भूक प्यास जो होय।
ये पांचो प्रकृति कही, अग्नि तत्त्व सो जोय॥

ये पांचों अग्निके तत्त्व हैं सो प्रत्यक्ष अनुभव होता है। क्योंकि, पेटमें अग्नि प्रबल हुए विना भूख नहीं लगती है। उष्ण काल (गर्मी के दिनों) में अग्निके ज़ोरसेही प्यास अधिक लगती है। इसीप्रकार आलस और निद्राभी गर्मीके दिनोंमें बहुत होते हैं। सोनेसे अन्नका पाचनभी होता है। इस लिये ये सब प्रत्यक्ष अग्निके भाग हैं। कान्ति तो प्रकटही तेज है। तू इन सबोंका जानने और देखनेवाला द्रष्टा साक्षी है; इसलिये ये तू नहीं है और ये तेजके हैं इसलिये तेरे नहीं हैं। ऐसा जानकर इनमेंसे अहंता ममता छोड़ दे। इसीप्रकार—

जलके पांच तत्त्व हैं। शुक्र (वीर्य), रक्त[1] (लोहू), लार, मूत्र और स्वेद (पसीना)।

ये पांचों प्रत्यक्ष जलरूप हैं। इससे ये तत्त्व तू नहीं है। और ये जलके हैं इसलिये तेरे नहीं है।

---

१ रक्त, बिन्दु, कफ तीसरो, स्वेद मूत्र सो जान।
यही पांचो प्रकृति जो, पानी सो पहिचान॥

तू इनका द्रष्टा इनसे भिन्न है; इस हेतु इनमें अहंता ममता त्याग करके सुखी हो। इसीप्रकार।

पृथ्वीके पांच तत्त्व हैं।

अस्थि (हड्डी), मांस, त्वचा (चमड़ा), नाड़ी (नस) और रोम (बाल)।

ये पांचों तत्त्व पृथ्वीके हैं। क्योंकि, जिस समय स्थूल शरीरमेंसे प्राण निकल जाता है उस समय आकाश, वायु, और तेज तथा जल इन चारों भूतोंके कामक्रोधादि विभाग अपने अपने कारणरूप आकाशादि भूतोंमें मिल जाते हैं। क्योंकि, मुर्दामें कामक्रोधादि आकाशके तत्त्वोंका अभाव हो जाता है, चलना फिरना आदि क्रिया वायुके तत्त्व हैं ये भी उसमें नहीं रहते। क्षुधा तृषाआदि तेजके तत्त्वोंकाभी पता नहीं रहता। इसी प्रकार शुक्र शोणित इत्यादि जलके तत्त्व भी उसमें नहीं होते।

१ चाम, हाड, नाडी, कही, रोमजान अरु मांस।
ये पृथ्वीकी प्रकृति हैं, अन्त सबनको नास॥

किन्तु पृथ्वीके तत्त्व अस्थि, मांस, त्वचा, नाडी, और रोम ये पांचो तत्त्व मुर्देमें प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं। देहको जला देनेपर ये तत्त्वभी नाश होजाते हैं। इस देहको गाडे तो गलकर मिट्टीरूप बन जाती है और यदि इसे पशुपक्षी खाजावें तो विष्ठा होकर अन्तमें मिट्टीमें मिल जाती है[1]।

इसलिये ये तत्त्व सब पृथ्वीके हैं और तू इनका जाननेवाला है इसलिये ये तत्त्व तू नहीं है न ये तत्त्व तेरे हैं। तू इनका द्रष्टा साक्षी है इसलिये तू सदा इनसे अलग है।

उपर्युक्त पच्चीस तत्त्वोंसे यह स्थूल देह बनी है और यह पंचीकृत पंचमहाभूतनका कार्य्य है। यह जानकर इसमें तू अहंता ममता त्याग करके अपने स्वरूपमें आनन्दको प्राप्त हो।

---

१ जारे भसम होयजायी गाडे क्रीम कीट खायी।
शूकर स्वान कागके भोजन तनकी यही बडायी।
अन्न मिट्टी मिल जायी॥

शिष्य—हे भगवन् ! पंचीकृत पंचमहाभूत किसे कहते हैं सो कृपाकर कहिये ।

गुरु—हे शिष्य ! ईश्वरेच्छासे एक एक भूतोंके दो दो भाग हुए । उनमेंसे सब भूतोंके एक एक भाग अलग रहे । दूसरे भागके चार चार भाग हुए । अब ये चार चार भाग अपने अपने आधे आधे भागोंको छोड़कर दूसरे चार भूतोंके आधे भागोंमें मिलगये । इसीको पंचीकरण कहते हैं । इसप्रकारसे जिनका पंचीकरण हुआ है उन्हे पंचीकृत पंचमहाभूत कहते हैं ।

इन्ही पंचीकृत पंचमहाभूतोंसे उपरोक्त पच्चीस तत्त्व प्रकट हुए हैं जिनसे स्थूल देह बनी है ।

हे शिष्य ! अब स्थूल देहके पच्चीस तत्त्वोंको पंचीकरणकी रीतिसे समझाता हूँ तू ध्यान देकर सुन !

स्थूल देहके पंचीकृत पच्चीस तत्त्वोंके समझनेका कोष्टक।

पंचभूत	पृथ्वी	जलका	अग्निका	वायुका	आकाशका
पृथ्वीका	अस्थि	रक्त	आलस्य	संकोच	कक्षाकाश
जलका	मांस	वीर्य्य	कान्ति	चलन	उदराकाश
अग्निका	नाड़ी	मूत्र	क्षुधा	उत्क्रमण	हृदयाकाश
वायुका	त्वचा	पसीना	तृषा	धावन	कंठाकाश
आकाशका	रोम	लार	निद्रा	प्रसारण	शिरआकाश

कोष्टकका स्पष्टीकरण।

पृथ्वीके तत्त्व।

अस्थि—पृथ्वीका भाग है क्योंकि, यहभी पृथ्वीके समान कठिन है। इससे पृथ्वीका आधा भाग इसीको समझना चाहिये! शेषके आधे भागके चार भाग हुए—१ शोणित, २ आलस्य, ३ संकोचन, ४

कट्याकाश; सो जलआदि दूसरे चार भूतोंमें मिले। उसकी समझ इसप्रकार है।

१ शोणित—लोहूका रंग लाल है इसलिये पृथ्वीका भाग है यह जलमें मिला इसलिये जलके तत्त्वोंके साथ कहा गया।

२ आलस्य—पृथ्वीके समान आलस्यमेंभी जडता है इसलिये पृथ्वीका भाग है। तेजमें मिलनेसे तेजका तत्त्व कहलाया।

३ संकोचन—यहभी पृथ्वीके समान जडताका हेतु है इसलिये पृथ्वीका भाग है। किन्तु वायुके साथ मिलनेसे वायुका कहलाता है।

४ कट्याकाश—यह पृथ्वीके भाग मलको रखता है इसलिये पृथ्वीका भाग है किन्तु आकाशमें मिलनेसे आकाशका कहलाया।

जलके तत्त्व।

वीर्य्य—जलका मुख्य भाग है क्योंकि, जिसप्रकार

जल स्वेत है और वृक्षादिकोंका उत्पन्न कर्ता है उसी प्रकार वीर्य्यभी स्वेत है और गर्भको उत्पन्न करता है। इसी लिये यह जलका मुख्य भाग है। और

जलके शेष आधे भागके चार भाग हुए १ मांस, २ कान्ति, ३ चलन और ४ उदराकाश। ये पृथ्वीआदि चार भूतोंके साथ मिले। उसकी समझ इसप्रकार है।

१ **मांस**—द्रवीभूत है इसलिये जलका है। किन्तु पृथ्वीके तत्त्वोंकेसाथ मिलनेसे पृथ्वीका कहलाया।

२ **कान्ति**—जलका भाग इसलिये है कि, जलके सम्बन्धसे कान्तिमें फेरफार होता है। जलसे मुख धोनेपर मुखकी कान्ति बढजाती है। किन्तु कान्ति तेजकेसाथ मिलनेसे तेजकी कहलाती है।

३ **चलन**—पानीके समान चलायमान है इससे पानीका भाग है किन्तु वायुके तत्त्वके साथ मिलकर वायुका कहलाता है।

४ **उदराकाश**—जलके रहनेका स्थान है इस-

लिये जलका भाग है किन्तु आकाशसें मिलनेसे आकाशका कहलाता है।

तेजके तत्त्व।

क्षुधा तेजका मुख्य आधा भाग है क्योंकि पेटमें अग्नि बढनेसेही भूख लगती है।

तेजके शेष आधे भागमेंसे १ नाड़ी, २ मूत्र, ३ उत्क्रमण और ४ हृदयाकाश हुए जो पृथ्वीआदि शेष चार तत्त्वोंके साथ मिलकर उसीके कहलायें। अर्थात्

१ नाड़ीसे ज्वरकी परीक्षा होती है इस लिये यह तेजका भाग है किन्तु पृथ्वीकेसाथ मिलनेसे पृथ्वीकी कहलाती है।

२ मूत्र—गर्म होता है इसलिये अग्निका भाग है किन्तु जलकेसाथ मिलनेसे जलका कहलाता है।

उत्क्रमण—अग्निके समान उत्क्रमणमें ऊर्ध्व-गति है इसलिये यह तेजका अंश है किन्तु वायुकेसाथ मिलनेसे वायुका कहलाता है।

४ हृदयाकाश—हृदयमें सदा उष्णता रहती है इसलिये यह तेजका भाग है किन्तु आकाश तत्त्वमें मिलनेसे आकाशका कहलाता है ।

वायुके तत्त्व ।

धावन (दौड़ना) वायुका मुख्य आधाभाग है क्योंकि दौड़नेमें वायुके समान वेग है वायुके शेष आधे भागके चार विभाग १ त्वचा, २ स्वेद, ३ तृषा और ४ कंठाकाश हुए जो दूसरे चार तत्त्वोंकेसाथ मिलकर उन्हींके कहलाते हैं । जैसे ।

१ त्वचासे स्पर्श होता है इसलिये वायुकी है किन्तु पृथ्वी तत्त्वके साथ मिलकर पृथ्वीकी कहलाती है ।

२ स्वेद—बहुत श्वासोच्छ्वासरूप वायुसे पसीना होता है और वायुसेही सूखता है इसलिये यह वायुका भाग है किन्तु जल तत्त्वके साथ मिलकर जलकाही कहलाता है ।

३ तृषा—वायुसे सोषण होकर प्यास उत्पन्न होती

है इसलिये तृषा वायुका भाग है किन्तु तेजकेसाथ मिलकर तेजकी कहलाती है

४ कंठाकाश—वायुके आने जानेका मार्ग है इसलिये वायुका भाग है किन्तु आकाशके तत्त्वके साथ मिलनेके कारण आकाशका कहलाता है।

आकाशके तत्त्व।

शिराकाश—आकाशका मुख्य आधा भाग है क्योंकि माथामें जो पोल है सो आकाशरूप है। आकाशके शेष आधे भागके चार भाग हुए १ रोम, २ लार, ३ निद्रा और ४ प्रसारण। सो ये चारों पृथ्वी आदि चारों भूतोंमें मिलकर उसीके कहलाये। जैसे

१ रोम—काटनेसे दुख नहीं होता इसलिये आकाशका भाग है किन्तु पृथ्वीकेसाथ मिलनेसे पृथ्वीका कहलाया।

२ लार—शिराकाशमेंसे नीचे आती है इसलिये आकाशका भाग है किन्तु जलके तत्त्वकेसाथ मिलकर जलकी कहलायी।

३ निद्रा—शून्य स्वभाववाली है इसलिये आकाशकी है किन्तु तेजतत्त्वके साथ मिलकर तेजकी कहलाती है ।

४ प्रसारण—में व्यापकता है इसलिये आकाशका है किन्तु वायुकेसाथ मिलकर वायुका कहलाता है क्योंकि वायुसेही शरीर मोटा होता है ।

इति कोष्टकका स्पष्टीकरण ।

हे शिष्य ! इसप्रकार स्थूल देहके पच्चीस तत्त्वोंमें पंचीकरणका निरूपण मैंने तुझे सुनाया सो गौण-पक्षसे समझनेके लिये है और पंचीकृत पंचमहा-भूतोंमेंसे पच्चीस तत्त्वोंका जो स्थूल शरीर बना है सो मुख्य पक्ष है । उन तत्त्वोंको प्रथम कोष्टकके अनुसार जानना । केवल आकाशके तत्त्वोंमें दो पक्ष हैं जिनमेंसे पहले पक्षमें काम क्रोधादि कहा है और दूसरे पक्षमें शिराकाश, कंठाकाश, हृदयाकाश, उदराकाश और कट्याकाश कहा है । किन्तु इन सबोंके निरूपण करनेका मुख्य अभिप्राय यह

है कि, सर्व तत्त्व भौतिक (पंचभूतके कार्य्य) हैं इसलिये जड़ हैं। और इनका जाननेवाला, द्रष्टा, निर्विकारी, असंग आत्मा है। उन तत्त्वोंका समुदाय रूप स्थूल देह तू नहीं है। ये तत्त्व पंचभूतके हैं इसलिये तेरे नहीं है। इसलिये इनमेंसे तू अहंता ममता छोड़ दे। क्यों मिथ्या कल्पित दुःख अपने शिरपर उठाता है?। विचारतो सही! उन तत्त्वोंमेंसे तू कौन है? तेरा उनके साथ क्या सम्बन्ध है? जिससे उनको तू अपना मानता है। सत्य सत्य विचार कर देख तो, न तू वह है न वे तेरे हैं। इसलिये हे शिष्य! ऐसेही विचारसे देहमेंसे अहंता ममता छूटती है। देह नामभी उपरोक्त पच्चीस तत्त्वोंके मिलनेसेही हुआ है। यदि इन तत्त्वोंका अलग २ विचार किया जाय तो देहभी कुछ नहीं ठहरता है। जिस प्रकार पत्थर, ईंट, लकड़ी, चूना इत्यादिके समुदायसे घर बनता है किन्तु उनको अलग अलग करनेसे घर कुछभी नहीं रहता।

इसलिये यथार्थ विचार करनेसे देहकी सत्यता कुछभी नहीं मिलती मात्र कल्पना ही सिद्ध होती है। इसके ऊपर एक दृष्टान्त कहता हूं सो सुन।

देहकी असिद्धिमें गाड़ीका दृष्टान्त।

विवेकी और अविवेकी नामक दो पुरुष कहीं मार्ग चले जाते थे। अविवेकीने विवेकीसे कहा कि, तुम चलते चलते थक गये होगे सो वह गाड़ी आ रही है उसीमें बैठ जाओ। विवेकीने कहा कि, गाड़ी तो कहीं देख पड़तीही नहीं है। अविवेकी बोला कि, प्रत्यक्ष गाड़ी आती देख पड़ती है और तुम कहते हो कि, गाड़ी दीखही नहीं पड़ती, इसका कारण कुछ समझमें नहीं आता। विवेकीने कहा कि यदि गाड़ी सिद्ध न होवे तो तुम्हारी क्या सजा होनी चाहिये? अविवेकीने उत्तर दिया कि तब मेरे मुंह पर एक लप्पड़ मारना। इसप्रकार दोनोंमें परस्पर बात होही रही थी कि, गाड़ी निकट आगयी।

अविवेकीने कहा देखो यह गाड़ी है। तुम्हारी इच्छा बैठनेकी होतो भाड़ाका निश्चय करें।

विवेकीने कहा कि, मुंहसेही गाड़ी गाड़ी कहते जाते हौ कि हाथ धरकेभी गाड़ी बताओगे? कि यह गाड़ी है।

अविवेकीने धुरीपर हाथ रखकर कहा यह गाड़ी है।

विवेकीने कहा कि, यह तो धूरी है।

इसीप्रकार अविवेकीने गाड़ीके प्रत्येक अंग उपांगपर हाथ रखा और विवेकीने उसका नाम कहकर गाड़ी सिद्ध नहीं होने दिया। तब अविवेकी अपनेको हारा जानकर कहने लगा कि, "मैं हारा अब मेरे मुंहपर तमाचा मारो"। तब विवेकीने कहा कि, अपना मुंह बताओ तब तमांचा मारूं। अविवेकीने गालपर हाथ रखा तब विवेकीने कहा कि यह तो गाल है, मुंह बताओ। तब अविवेकीने मुखके सर्व अवयव नाक कान आंख इत्यादिपर हाथ रखा और विवेकी उनका नाम कहकहकर मुखको असिद्ध करता गया। अन्तमें मुख कुछभी सिद्ध नहीं हुआ।

हे शिष्य ! इसीप्रकार संसारमें जितने नाम हैं उनका सच्चा रूप ढूंढने लगो तो कुछभी सिद्ध नहीं होगा। ये नामोंकी कल्पना तो केवल व्यवहार सिद्ध करनेके लियेही की गयी है। इसीप्रकार यह देह कल्पना मात्र है इसलिये इसमें अहंता ममता करना महानभूल और बन्धनका कारण है। इनमें अहंता ममताका त्याग करनाही मोक्ष है।

इसके अतिरिक्त इसी स्थूल देहको अन्नमय कोशभी कहते हैं सो अन्नमय कोशसेभी अपनेको भिन्न जानना।

शिष्य—हे गुरु ! स्थूल देह अन्नमय कोश क्यों कहलाता है सो कृपाकर कहिये ?

गुरु—हे शिष्य ! मातापिताके खाये हुए अन्नका परिणाम रुधिर और वीर्य्य होता है उसी रुधिर और वीर्य्यके संबंधसे यह स्थूल देह उत्पन्न होता है। जन्म लेनेके पश्चातभी माताके खाये हुए अन्नके परिणामरूप दूधको पीकरही स्थूल देह बढती है। फिर दांत निकलनेके पश्चात् अन्न खाकरही शरीर

की वृद्धि और पोषण होता है। फिर यह स्थूल देह अन्य प्राणियोंका भक्ष्यरूप अन्न है। अन्न खाय विना यह देह रह नहीं सकती वरन अन्नसेही जीती है। जब यह शरीर मरता है तबभी अन्नरूप पृथ्वी-मेंही लय होता है। इसलिये इसको अन्नमय कहते हैं।

और इसको कोश कहनेका यह कारण है कि, जिसप्रकार म्यान (कोश) तलवारको ढांकता है तथा धनको ढांकनेवाले भंडारकोभी कोश कहते हैं। इससे ढांकने वालेको कोश कहते हैं। और यह अन्नमय शरीर आत्माको ढांकता है इसलिये इस-कोभी कोश कहते हैं। इसीकारणसे इस शरीरका नाम अन्नमय कोश पड़ा है।

सो यह अन्नमय कोश दृश्य है तू द्रष्टा है। इस-लिये तू इस अन्नमय कोशसे भिन्न है। इसलिये मुमुक्षुओंको ऐसा निश्चय करना चाहिये कि, "मैं अन्नमय कोशातीत हूं"। ऐसाही सद्गुरुसे समझ-कर निश्चय करना।

इसप्रकार स्थूल देहका वर्णन करके अब उसकी अवस्था आदिका वर्णन करता हूं, सो हे शिष्य! सावधान होकर सुन।

चौपाई

जागृत अवस्था नेत्रस्थान।
वैखरी वाचा स्थूल भोग जान॥
क्रिया शक्ति रजोगुण मान।
अकार मात्रा विश्व अभिमान।

टीका—जागनेका नाम जागृत अवस्था है। और इन्द्रियोंसे शब्दादि विषयोंका जिस अवस्थामें ज्ञान होता है उसे जाग्रत अवस्था कहते हैं। यह शास्त्र प्रसिद्ध बात है। इस जागृत अवस्थाका व्यवहार बयालीस तत्त्वोंसे होता है। उन बयालीस तत्त्वोंको नीचेके कोष्टकके अनुसार समझना।

ज्ञानेन्द्रियोंकी त्रिपुटी ।

(अध्यात्मक) पंच ज्ञानेन्द्रियोंके नाम.	(अधिभूत) उनके विषयोंका नाम.	(अधिदैव) उनके देवताओंका नाम.
श्रोत्र	शब्द	दिशा
त्वचा	स्पर्श	वायु
चक्षु	रूप	सुर्य्य
जिह्वा	रस	वरुण
घ्राण	गंध	अश्विनीकुमार

कर्मेन्द्रियोंकी त्रिपुटी

पंच कर्मेन्द्रियोंके नाम.	उनके विषय.	उनके देवता.
वाक	वचन	अग्नि
पाणि	आदान (लेनादेना)	इन्द्र
पाद	गमन	उपेन्द्र
शिश्न	आनन्द	प्रजापति
गुदा	विसर्ग	मृत्यु

अन्तःकरणकी त्रिपुटी ।

चार अन्तःकरणके नाम.	विषय.	देवता.
मन	संकल्प	चन्द्रमा
बुद्धि	निश्चय	ब्रह्मा
चित्त	चिंतन	नारायण
अहंकार	अभिमान	रुद्र

उपर्युक्त व्यालीसं तत्वोंमेंसे यदि एकभी कम हो तो उतना कार्य्य जागृतमें नहीं होता। जागनेसे लेकर शयन प्रर्यन्त जितना कार्य्य होता है उसे जाग्रतकी क्रिया कहते हैं। हे शिष्य! तू उन सब कार्य्यका जानने वाला है इससे तू उन सबसे अलग है।

जाग्रत अवस्थाका स्थान नेत्र है क्योंकि, विशेष करके जाग्रतका व्यवहार नेत्रसेही होता है।

जाग्रत अवस्थाका वाचा वैखरी है। १ कंठ, २ तालु, ३ जिव्हा मूल, ४ दांत, ५ ओष्ठ, ६ नासिका, ७ हृदय और ८ शिर। इन आठ स्थानों द्वारा प्रकट जो सर्व मनुष्य बोलते हैं उसे वैखरी वाचा कहते हैं। और यह बैखरी वाणी जाग्रत सिवाय स्वप्नादि अवस्थामें उच्चारण नहीं हो सकती इसलिये यह जाग्रतकी है।

स्थूल भोग अर्थात् प्रकट सुखदुःखादि जो भोग होते हैं।

क्रिया शक्ति अर्थात् शरीरका क्रियारूप जो प्रसिद्ध व्यवहार होता है सो।

रजोगुण अर्थात् अभिमानद्वारा रागद्वेष आदिसे जो राजसी व्यवहार होता है सो । अकार मात्रा ।

विश्व अभिमान अर्थात् जागृत अवस्थामें बुद्धिमें आत्माका जो आभास सो; तात्पर्य्य (कर्ता भोक्तापनेका अभिमान करनेवाला जीव)

हे शिष्य ! इन सब तत्त्वोंका तू जाननेवाला है इसलिये ये तू नहीं । ये सब तत्त्व जाग्रत अवस्थाके सम्बन्धी हैं इसलिये तेरे नहीं है, तू इनका द्रष्टा साक्षी है ।

चौपाई ।

उपला पच्चीसने आ अष्ट ।
एवा तत्त्व तेत्रीश स्पष्ट ॥
ए दृष्य तूं द्रष्टा जान ।
ए तूं केम थाईश वेद प्रमाण ॥

टीका—उपर्युक्त प्रथम कहे हुए स्थूल देहके पच्चीस क्रोधादि तत्त्व तथा अभीका कहा हुआ

आठ तत्त्व सब मिलकर तेंतीस तत्त्व स्पष्ट जाने जाते हैं। हे शिष्य! तू इनका द्रष्टा है। ये तेरे दृश्य हैं। इसलिये ये सब तेरे नहीं है। तू इनसे सदा भिन्न है। तुझमें इनका कुछ लेशमात्रभी नहीं है। इस प्रकार वेद प्रमाण है। और श्रीशंकराचार्यभी वाक्यवृत्ति-नामक ग्रन्थमें देहसे आत्मा भिन्न निरूपण करते हैं।

श्लोक।

घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथा देहो नाहमित्यवधारयेत्॥

अर्थ—जिसप्रकार घटद्रष्टा घटसे भिन्न है वह किसी प्रकारभी घट (दृश्य) नहीं हो सकता। उसी प्रकार "देहकाद्रष्टा मैं देहसे भिन्न हूँ मैं कदापि देह नहीं हो सकता" इस प्रकारका निश्चय करना।

जिस प्रकार घट पंचभूतसे बना है सो जड़ और दृश्य है उसी प्रकार यह तेरा देह पंचभूतसे उत्पन्न हुआ है तथा जड और दृश्य है इसलिये घटके समानही है। इसका द्रष्टा तू चैतन्य है।

शिष्य–हे गुरु! घट जैसे बनता है वैसेही रहता है किन्तु यह शरीर तो उत्पन्न होकर नित्य बढता है। चलता फिरता और सब क्रिया करता है। चैतन्य देख पड़ता है; फिर यह घटके समान जड कैसे हो सकेगा?।

गुरु–हे शिष्य! देह बढती है इसीसे चैतन्य नहीं हो सकती। जिसप्रकार भीतपर नित्य ईंटां चढाकर उसको बढाया जाता है तो वह बढती है और घूरेपर नित्य कूरा कुरकुट फेंकनेसे वह बढता है इससे वह कुछ चैतन्य नहीं कहला सकता। उसी प्रकार देहमेंभी नित्य अन्न, जल, शाक, मेवा आदि डाला जाता है इससे नित्य बढता है। इसलिये इसको चैतन्य नहीं कह सकते। किन्तु तपे हुए लोहेमें अग्निके संयोगसे जलानेकी शक्ति आती है; उसी प्रकार चैतन्य आत्माके संयोगसे देहमें चैतन्यता देख पड़ती है। यह स्वयम् चैतन्य नहीं है। इसलिये देह जड है; तू इसका द्रष्टा इससे जुदा

अजर, अमर, चैतन्य, निर्विकार आत्मा है ॥ ८ ॥

शिष्य—हे गुरु ! मैं जन्मा हूँ और एक दिन मरभी अवश्य जाऊँगा । फिर आप मुझे अजर अमर क्यों कहते हैं ?

गुरु—हे शिष्य ! यास्कनामक आचार्यने देहमें जन्मादि छः विकारका निरूपण किया है सो मैं तुझसे कहता हूँ, सुन ! ।

दोहा ।

जायते अस्ति वर्द्धते, विपरिणमते जोय ।
अपक्षीयते विनश्यति, षट्‌विकार कहि सोय ॥

टीका—जायते (जन्मता है), अस्ति (जन्मके पश्चात् है), वर्द्धते (जन्मके पश्चात् बढता है), विपरिणमते (युवा होता है), अपक्षीयते (वृद्ध होता है) और विनश्यति (मर जाता है)। ये छः विकार देहके हैं ।

दोहा ।

ए षट्विकार देहने कह्या, तूं पोते निर्विकार।
गुरुवाक्ये विश्वास करी, अनुभव मनमें धार॥

टीका—उपर्युक्त जन्मादि छः विकार स्थूल देहको होते हैं । किन्तु तू सो स्थूल देह नहीं है, तू तो स्वयम् निर्विकार आत्मा है । देहके विकारी होनेसे आत्मा विकारी नहीं हो सकता । जिस प्रकार मिट्टीमेंसे घट बनता है । अब उस घटमें जो आकाशका भाग सो घटाकाश कहलाता है, सो आकाश कुछ नया तो जन्मा नहीं है वह तो घटके प्रथम भी था और पीछेभी रहता है, और घटका तो होनेके पश्चात् "यह घट है" ऐसा अनुभव होता है । प्रथम घट बनता है । फिर उसको पीटकर बढाया जाता है, पकनेके पश्चात् पूरा होनेपर परिणाम अवस्थामें आता है । पश्चात् ठोकर लगा या छेद हो गया तो वृद्ध होकर नाश हो गया । घट तो अनेक विकारोंको प्राप्त होकर नाश हो गया किन्तु उसके

भीतरके आकाशको कुछ विकार आया ? कुछभी नहीं। क्योंकि, आकाश निरवयव, असंग, और निर्लेप है ।

उसी प्रकार देह जन्मता है, जन्म लेकर बढता है, युवा होता है, वृद्ध होता है और मरजाता है । किन्तु तू आत्मा इन विकारोंसे रहित निर्विकार, निरवयव और असंग है ।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्रनेभी गीताके दूसरे अध्यायमें आत्माको जन्मादि छः विकारोंसे रहित कहा है ।

श्लोक ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय :। अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

अर्थ—यह अपरोक्षरूप आत्मा न कभी जन्मता है न मरता है न यह जन्मलेकर अस्ति आदि अनेक विकारोंको प्राप्त होता है । किन्तु अज (अजन्मा) है, नित्य (विपरिणामरूप चौथे विकारसे रहित

एक रूप) है, पुराण (वृद्धि विकाररहित अनादि सिद्ध) है, शस्त्रादिकरके शरीरका नाश होता है, किन्तु आत्माका नाश नहीं होता है ।

इसलिये हे शिष्य ! गुरुके वचनमें विश्वास रखके ऐसा निश्चय कर कि, "मैं आत्मा निःसंग और निर्विकार हूँ" ऐसा अनुभव दृढ धारण करनेसेही तेरा बन्धन निवृत्त हो जायगा ॥ १० ॥

इसप्रकार जब गुरुने स्थूल देहसे आत्माको भिन्न सिद्धकरके स्थूल देहमेंसे शिष्यका अहंता ममतारूप अभ्यास छोड़ाया तब शिष्य शंका करता है कि, यदि स्थूल देह तो मैं नहीं हूँ तो स्थूल देहसे भिन्न सूक्ष्म देह हूँगा ।

सूक्ष्म देहका वर्णन ।

शिष्यप्रश्न

दोहा ।

स्थूल देह ते हूँ नही, सूक्ष्म देह हूँ जान ।

सद्गुरु उत्तर

सद्गुरु कहे ते तूं नहीं, लिंग दृश्य बखान ११

टीका—शिष्य कहता है, हे गुरु ! आपके उपदेशसे मैंने निश्चय करके जाना है कि, मैं स्थूल देह नहीं हूँ किन्तु सूक्ष्म देह हूंगा ऐसा जान पड़ता है। तब गुरु उत्तर देते हैं।

गुरु—हे शिष्य। सूक्ष्म देहभी तू नहीं है। लिंग (सूक्ष्म) देहभी तेरा दृश्य है और तू उसका द्रष्टा है ॥११॥

गुरुने सूक्ष्ममेंही यह कहकर "लिंगदेह तू नहीं है" ऐसा शिष्यको लिंगदेहमेंसे अध्यास छोड़नेका उपदेश दिया, किन्तु विस्तारसे लिंगदेहका स्वरूप वर्णन नहीं किया इसलिये शिष्य फिर लिंगदेहकोही आत्मा मानकर गुरुसे प्रश्न करता है।

शिष्य प्रश्न।

चौपाई।

स्वामी स्थूल देह ते हूँ नहीं।

पण सूक्ष्म देह ते हूँ सही ॥

गुरु उत्तर।

गुरु कहे ते तूँ केम थाईश भाई।
प्रथमनी पेठे विचारो जाई ॥ १२ ॥

टीका—शिष्य कहता है ; हे गुरु—स्थूल देह मैं नहीं हूँ ; क्यों कि, पंचभूतके कार्य्य पच्चीस तत्त्वोंका समुदायरूप यह स्थूल शरीर भौतिक है और अति मलिन रज और वीर्य्यमेंसे इसकी उत्पत्ति है तथा हाड़, मांस, रुधिर, मल, मूत्र, कफ, आदि अत्यन्त अपवित्र पदार्थोंसे पूर्ण है। इसके नव द्वारमेंसे भी अति दुर्गन्धिरूप मल, मूत्र, कफ आदि नित्य निकला करता है। इतनीही नहीं वरण इसमें नानाप्रकारके मेवा मिष्टान्न आदि पवित्र पदार्थोंकोभी डालनेसे शीघ्रही विगड़कर मलरूप हो जाता है। अति उत्तम सुन्दर वस्त्रभी शरीरके संगसे विगड़कर मलीन और दुर्गन्धिवाला होजाता है। इसप्रकार

अत्यन्त मलीन और अनेक विकारोंसे भरा हुआ स्थूल देह मैं नहीं हूँ। यह दृश्य है, मैं द्रष्टा हूँ। जब मैं स्थूल देह नहीं हूँ तब इसके धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वान-प्रस्थ तथा संन्यास ये चार आश्रमभी मेरे नहीं है। इसी प्रकार स्थूल, कृश, श्याम, गौर, बाल, युवा, प्रौढ, वृद्ध आदि स्थूल देहके कोईभी धर्म मुझमें नहीं है। यह सब मैंने अनुभवसे जाना है; किन्तु स्थूल देहके भीतर जो सूक्ष्म देह है सो तो मैं हूँ। क्योंकि स्थूल देहका चलना, फिरना, जाना, आना सुनना आदि जो व्यवहार होता है सो सब सूक्ष्म देहकेही आधारसे होता है। क्योंकि, स्थूल देहमें, देखना, क्रिया चक्षुसे होता है; सुनना, श्रोत्रसे; बोलना वाक्से इत्यादि जितना स्थूल देहका व्यव-हार है सो सब सूक्ष्म देहकी इन्द्रियोंसेही चलता है। उसी प्राणवाले सूक्ष्म देहसे स्थूल देह जीवित रहता है क्योंकि, प्राणके निकलतेही स्थूलशरीर मृत्युको

प्राप्त होता है। इसलिये स्थूल देहमें सूक्ष्म देहकीही प्रधानता है। औरभी देखिये कि, जबतक स्थूल देहमें सूक्ष्म शरीर है तबतक स्थूल देहमें माता, पिता, पुत्र, भाई, भतीजा इत्यादि सर्व सम्बन्ध रहते हैं। जब सूक्ष्म देह स्थूल शरीरसे निकला कि, सब सम्बन्ध विलीन हो जाता है और इसको तुरत वही सम्बन्ध माननेवाले लोग जलाकर भस्मकर डालते हैं। इसलिये "मैं सूक्ष्म देह हूँ" ऐसा समझ पड़ता है। इसके अतिरिक्त–"मैं बोलता हूं, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूँ" इत्यादि अहंप्रत्ययभी सूक्ष्म देहमें प्रत्यक्ष देखा जाता है. इससेभी मेरा सूक्ष्म देह होना सिद्ध होता है।

गुरु–हे शिष्य! तू सूक्ष्मदेहभी कैसे होगा? वहभी भौतिक, जड़ और दृश्य है। तू उसकाभी द्रष्टा साक्षी है। इसलिये तू सूक्ष्म देह नहीं है। और सूक्ष्म देहभी पंचमहाभूतोंकी है इसलिये वह

तेरी नहीं है। तू उसका साक्षी है। इसबातके अनुभव होनेके लिये जिस प्रकारसे स्थूल देहके भिन्न भिन्न तत्त्वोंका तूने विचार करके उससे आत्माको भिन्न जाना है उसी प्रकार सूक्ष्म देहकेभी तत्त्वोंका विचार करके उसे परख और अपनेको उससेभी भिन्न जानकर उसके जालमें मत पड़।

शिष्य—हे स्वामिन्! सूक्ष्म देहके कितने तत्त्व हैं? और कौन कौन तत्त्व किन किन भूतोंसे उत्पन्न हुआ है? सो विस्तारसे निरूपण करके समझाइये।

गुरु—हे शिष्य! सूक्ष्म देहके पच्चीस तत्त्व है। अन्तःकरण पंचक, प्राण पंचक, ज्ञानेन्द्रिय पंचक और विषय पंचक। ये पच्चीस तत्त्वभी आकाश, वायु, तेज, आप और पृथ्वी पंचमहाभूतोंसेही क्रमसे उत्पन्न हुए है। (अब इनके समझानेके लिये नीचे एक कोष्टक देते हैं, जिससे भिन्न २ प्रक्रियाओंद्वारा सूक्ष्म शरीरके तत्त्वोंको समझायेंगे)।

दक्षिण.

सूक्ष्म देहके विवरणका कोष्टक.

पूर्व.

पंच महाभूत	आकाशके अन्तःकरणपंचक (कर्ताभोक्ता)	वायुके प्राणपंचक (वाहन)	तेजके ज्ञानेन्द्रियपंचक (द्वार)	आपके कर्मेन्द्रियपंचक (सेवक.)	पृथ्वीके विषय पंचक (भोग.)
आकाश	अन्तःकरण प्रथम स्फुरण देवता विष्णु	व्यान ; सर्वांगमें रहता है कर्म-समस्त देहकी सन्धियोंको मोडता है	श्रोत्र ; देवता दिशा । जिनके द्वारा शब्द सुन पड़ता ; यह न हो तो बहिरा होता है	वाचा ; देवता अग्नि । इसीके द्वारा शब्द बोला जाता है यह न हो तो गुंगा ।	शब्द
वायु	मन : संकल्प विकल्पात्मक देवता चन्द्रमा । इसीके द्वारा संकल्प होता है ।	समान नाभि-स्थानमें रहता है । इसका काम-नाडी द्वारा अन्नके रसोंको रोमरोममें प्रवेश कराना है ।	त्वचा; देवता वायु जिस करके स्पर्श होता है अर्थात् शीत उष्ण, मृदु कठिनता आदिक जाना जाता है ।	पाणी (हाथ); देवता इंद्र । इसीके द्वारा पदार्थका लेना देना होता है यह न हो तो लूला होता है	स्पर्श

उत्तर.

दक्षिण

तेज	बुद्धि निश्चयात्मक । देवता ब्रह्मा । जिसके द्वारा निश्चय होता है ।	उदान कंठस्थानमें रहता है । इसका काम अन्नरसका विभाग करना और हितानाडीमें स्वप्न देखाना है ।	चक्षु ; देवता सूर्य्य । जिसके द्वारा देख पडता है । यह नहो तो अन्धा	पाद ; देवता उपेन्द्र । इसीके द्वारा गमनागमन क्रिया होती है यह नहो तो पंगुला	रूप
आप	चित्त चिन्तात्मक । देवता नारायण । उसीके द्वारा स्मरण होता है ।	प्राण हृदयस्थानमें रहता है इसका कर्म इक्कीस हजार छः सौ श्वासोच्छ्वास करना है ।	जिह्वा; देवता वरुण उसीके द्वारा रसास्वाद जाना जाता है । यदि वह नहो तो रसका ज्ञान ही न हो ।	शिश्न; देवता प्रजापति । इसीके द्वारा मूत्र त्याग रतिभोग होता है इसीकेविना नपुंसकता आती है ।	रस
पृथ्वी	अहंकार अहंपना देवता रुद्र उसीके द्वारा अहंकार होता है ।	अपान गुदास्थानमें रहकर मलका उत्सर्जन करता है ।	घ्राण;देवता अश्विनीकुमार । इसीके द्वारा सुगन्ध. दुर्गन्धका ज्ञान होता है यह नहो तो सु. दु. कुछभी न मालुमहो	गुद देवता मृत्यु (यम) उसीके द्वारा मलका त्याग होता है ।	गन्ध

पश्चिम

उत्तर.

सूक्ष्म देहके कोष्टकका स्पष्टीकरण।

इस कोष्टककी पहली, दूसरी तथा तीसरी प्रक्रियामें पूर्वसे पश्चिम ओर क्रमसे बांचकर तत्त्वोंका विचार समझना। और चौथी, पांचवी, छट्ठी तथा सातवीं प्रक्रियामें उत्तरसे दक्षिण ओर क्रमसे बांचकर तत्त्वोंका विचार समझना।

प्रक्रिया पहली।

आकाशके अन्तःकरणपंचक—१ अन्तःकरण, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त और ५ अहंकार हैं।

वायुके प्राणपंचक ये हैं—१ व्यान, २ समान, ३ उदान, ४ प्राण और ५ अपान।

तेजके ज्ञानेंद्रियपंचक ये हैं—१ श्रोत्र, २ त्वचा, ३ चक्षु, ४ जिह्वा और ५ घ्राण।

जलके कर्मेन्द्रियपंचक ये हैं—१ वाचा, २ पाणि, ३ पाद, ४ शिश्न और ५ गुदा।

पृथ्वीके विषयपंचक ये हैं। १ शब्द, २ स्पर्श। ३ रूप, ४ रस और ५ गंध।

हे शिष्य ! इन सब तत्त्वोंको तू जानता है इसलिये ये तत्त्व तू नहीं है। तू इनसे भिन्न है। ये सब तत्त्व पंचभूतोंके है इसलिये तेरे नहीं हैं। तू इन सब तत्त्वोंका द्रष्टा साक्षी है।

प्रक्रिया दूसरी।

शिष्य—हे गुरु ! पच्चीस तत्त्वोंके नाम जो आपने कहा सो मैंने जाना किन्तु इनके स्वरूपको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये इन तत्त्वोंका रूप और इनकी क्रियादिका वर्णन आप स्पष्टरूपसे कहिये।

अन्तःकरण पंचकका व्याख्यान।

गुरु—हे शिष्य ! सुन. अब मैं सबका अलग अलग स्पष्टीकरण सुनाता हूं।

अंतःकरण—से आशय है शरीरके अन्दर ज्ञान, सुख आदिके साधनरूप करण (इन्द्रिय) से। उसका

स्वरूप प्रथम स्फुरण है। अर्थात् कोई काम काज करनेके लिये सबसे प्रथम जो स्फूर्ति होती है उसे अन्तःकरणका कार्य्य कहते हैं। अन्तःकरणका देवता विष्णु है जिससे स्फुरण होता है।

मन—उपरोक्त अन्तःकरणके स्फुरणके कार्य करने या न करनेका विचार जिस इन्द्रियसे होता है उसे मन कहते हैं। इसीको संकल्प विकल्प कहते हैं। मनका देवता चन्द्रमा है उसीके द्वारा संकल्पविकल्प होता है।

बुद्धि—मनके संकल्प विकल्पके ऊपर एक निश्चय करनेवाली इन्द्रियको बुद्धि कहते हैं। इसका देवता ब्रह्मा है जिसके द्वारा निश्चय होता है।

चित्त—निश्चय किये हुए कामके विषयमें इस प्रकार चिन्तन करना कि, "यह काम किस प्रकार किया जावे कि, अच्छा होवे ?" ऐसे चिन्तन करनेवाले करणको चित्त कहते हैं। चित्तका देवता नारायण है जिसके द्वारा स्मरण (चिन्तन) होता है।

अहंकार—यह काम मैं करूंगा। ऐसे अभिमानको अहंकार कहते हैं। इसका देवता रुद्र है उसीके द्वारा अहंकार (अभिमान) होता है।

अन्तःकरण यथार्थमें स्वरूपसे एकही है किन्तु, स्फुरण, संकल्प विकल्प, निश्चय, चिंतवन और अभिमान नामंक उसकी पांच वृतियोंके होनेसे उसके मन आदि पांच अलग अलग नाम हुए। जिसप्रकार कोई ब्राह्मण है; वह यद्यपि स्वरूपसे एकही है किन्तु रसोई करनेसे रसोईया, पढानेसे पाठक, ज्योतिष जाननेसे ज्योतिषी, तथा नाडी देखनेसे वैद्य कहलाता है। उसीप्रकार एकही अन्तःकरण वृत्तिभेदसे मन बुद्धि आदि भिन्न २ अनेक नामोंको प्राप्त होता है।

हे शिष्य! इन सब अन्तःकरण मन आदिका तू साक्षी, इनसे भिन्न, इनका द्रष्टा है। तू अन्तःकरणादि नहीं है। सो विचार कर देख।

प्राण पंचकका व्याख्यान ।

व्यान—नामक वायु शरीरके सब भागोंमें रहकर सन्धियोंके मोड़नेका कार्य्य करता है ।

समान—नाभिस्थानमें रहता है । प्राणीके खाये पिये अन्नादिको जठराग्निमें पकाता है । उस पके हुए अन्नका सूक्ष्मसे सूक्ष्म सार भाग होता है वह हृदय-स्थानमें आकर मन बुद्धिको पुष्ट करता है । और जलका जो सार भाग होता है वह प्राणको पुष्ट करता है । और शेष अन्न जलके बचे हुए कुछ भाग मलमूत्रादि असार भाग होते हैं. जो गुदा लिंग और रोमकूप द्वारे बाहर निकल जाते हैं । इन दोनों प्रकारसे बचे हुए अन्नजलके मध्यम रसरूपी भागको समान वायु नाडियों द्वारा समस्त शरीरमें पहुंचाता है । जिस रसके परिणामरूप रुधिर मांस आदिसे समस्त शरीरका पोषण होता है । जिसप्रकार बागका माली कुवांसे पानी निकाल २ कर बागके आवश्यक

आवश्यक सब कियारियोंमें सींचता है जिससे वृक्ष और पौधे हरे रहते और बढ़ते हैं। उसी प्रकार शरीररूपी बागमें, समान वायुरूप माली, अवयव तथा रोमरूपी वृक्ष तथा पौधोंको, अन्नके रसरूपी जलको नाड़ीरूपी नालियों द्वारा सींचकर, समस्त शरीरको पुष्ट करता है।

उदान—वायु कंठमें रहता है। मनुष्य जो अन्न जल खाता पीता है उनका भिन्न भिन्न विभाग करना, तथा कंठस्थ "हिता" नामक अत्यन्त सूक्ष्म नाडी है, उसमें स्वप्न तथा हिचकी उत्पन्न करना उदान वायुका काम है

प्राण—हृदयस्थानमें रहता है। इसका काम दिनरातमें २१६०० श्वासोच्छ्वास है।

अपान—गुदा स्थानमें रहता है और मलका विसर्जन कराता है।

इसप्रकारसे पांचों वायु भिन्न भिन्न क्रियाके कर्ता हैं। हे शिष्य! तू इनका द्रष्टा है इसलिये तू पंचवायु

नहीं है। उनकी क्रियाका तू ज्ञाता है इसलिये तू क्रियाभी नहीं है। ये पंचवायु पंचभूतके है इसलिये तेरे नहीं। तू इन सबका साक्षी निर्विकार निर्लेप है।

ज्ञानेन्द्रियपंचकका व्याख्यान।

श्रोत्र—कानेन्द्रियका काम शब्द सुनना है। इसके देवता दिशा हैं। उन्हींके द्वारा शब्द सुना जाता है। यदि दिशा न हो तो शब्द सुनहीं न पड़े।

त्वचा—त्वचासे शीत, उष्ण, कोमल, कठिन आदिका ज्ञान होता है। इसका देवता वायु है।

चक्षु—आंखसे रूपका ज्ञान होता है। इसका देवता सूर्य्य है। सूर्य्यके विना किसी पदार्थका रूप देखनेमें नहीं आता।

जिव्हा—जीभसे खट्टा, मीठा, खारा, कसेला आदि स्वादका ज्ञान होता है। इसका देवता वरुण है।

घ्राण—नाकसे सुगन्ध दुर्गंध आदि गन्धोंका ज्ञान होता है। इसके देवता अश्विनीकुमार हैं।

हे शिष्य ! इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंको तू जानता है इनके कामकोभी जानता है; इसलिये तू ज्ञानेन्द्रिय नहीं है। और ये पंचभूतके हैं इसलिये तेरे नहीं हैं। तू इनका द्रष्टा, साक्षी, इनसे भिन्न है।

कर्मेन्द्रियपंचकका व्याख्यान।

वाचा–वाणि इन्द्रियका काम बोलना है। इसका देवता अग्नि है जिसके विना बोल नहीं सकता।

पाणि–हाथ इन्द्रियका काम लेना देना है। इसका देवता इन्द्र है।

पाद–पगेन्द्रियका काम आना जाना है। इसका देवता उपेन्द्र है, जिससे जाने आनेकी क्रिया होती है।

शिश्न–उपस्थेन्द्रियका काम मूत्र त्याग करना तथा रतिभोग करना है। इसका देव प्रजापति है। इसके विना नपुंसकता आती है।

गुदा—इसका देवता यम है। मलका त्याग करना इसकी क्रिया है।

हे शिष्य ! इन पाचों कर्मेन्द्रियोंको तू जानता है इससे ये इन्द्रियें दृश्य हैं तू इनका द्रष्टा है। और ये इन्द्रियां पंचभूतकी हैं इसलिये तेरी नहीं हैं। तू इनका साक्षी ज्ञाता सदा इनसे भिन्न है।

विषयपंचकका व्याख्यान।

हे शिष्य ! इसीप्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यही पांच विषय हैं। इनसेभी तू आत्मा सदा भिन्न है। तू विषय नहीं है। इनका द्रष्टा साक्षी और ज्ञाता है। इन पांच विषयोंमें आसक्त होकर प्राणी दुःख और बन्धनको प्राप्त होते हैं। इसलिये इनका संग सदा त्याग करना चाहिये इसलिये हे शिष्य ! तू इनको अपना मतमान। देख एक एक विषयमें आसक्त एक एक जंतु नाशको प्राप्त होते हैं। तब एक मनुष्य जो इन पांचो विषयोंमें आसक्त होता है तो इसका नाश क्यों न होवे ?

शिष्य–हे गुरु ! किस किस विषयमें आसक्त होनेसे किस किस जंतुका नाश होता है ? सो कृपा करके कहिये ।

गुरु–हे शिष्य !

शब्द–विषयमें आसक्त होकर हिरण मृत्युको पाता है । जब पारधी (व्याधा) बनमें जाकर वीणा बजाकर उत्तम स्वरसे गाता है तब उसके शब्दको सुनकर हिरण निकट आते हैं और शब्दके सुननेमें ऐसे मग्न होते हैं कि, अपने तनकीभी सुधि उनको नहीं रहती है । फिर तो हिरणोंको निकट और बेसुध देखकर पारधी उन्हें मार लेता है । इसप्रकारसे शब्द विषयमें आसक्त होनेवाले हिरणका नाश होता है ।

स्पर्श–स्पर्श विषयमें आसक्तिवाला हाथी नाशको प्राप्त होता है । जिस देशमें हाथी बहुत होते हैं उस देशमें व्यापारी लोग हाथी दांत लेनेको

जाते हैं। फिर जहां बहुत हाथियोंका आना जाना होता है वहां बड़ासा खड्डा खोदकर ऊपरसे कमज़ोर बांस अथवा और लकड़ियोंको पाट देते हैं। फिर लकड़ीकी हथनी बनाकर उसपर खड़ा कर देते हैं। पश्चात् जब हाथियोंका झुण्ड उस ओरसे निकलता है; और उनमेंसे किसी हाथीकी नज़र उक्त बनावटी हथनीके ऊपर पड़ती है तब वह दौड़कर उसको स्पर्श करनेके लिये उसके निकट आता है; बस आतेही खड्डेमें गिरकर मृत्युको पाता है। और दांत लेनेवाले दांत काटकर ले जाते हैं।

रूप—विषयके सेवनसे पतङ्गोंको नाश होते नित्य सब लोग देखते हैं; क्योंकि, पतङ्ग दीपककी ज्योति देखतेही उसमें पड़कर नाश होता है।

रस—विषयसे मछलीका नाश होता है। जब मछली मारनेवाला चारा लगाकर बंसी पानीमें डालता है तब रसमें आसक्त मछली खानेके लाल-चसे जैसेही उस चारेको निगलती है कि, वैसेही

मच्छी मार बंसीको झटका देता है और कांटा (बंसी) से मछली छिद जाती है। फिर तो मच्छी खानेवाले उसका नाश कर डालते हैं।

गन्ध—गन्धका अनुरागी भौंरा जब कमलपर जाकर बैठता है। तब उसकी गन्धमें ऐसा बेसुध होता है कि उसे अपनी सुद्धि कुछ नहीं रहती। इतनाहीमें सन्ध्या होनेसे जैसे सूर्य्य ओटमें होता है। कि कमलभी संपुटको प्राप्त होते हैं। उससमय गन्धमें अचेत हुआ भौंरा कमलके संपुटमें बन्द हो जाता है। यद्यपि भौंरा काठको छेदकर बाहर हो जाता है तथापि गंधका प्रेमी, गन्धमें आसक्त, वही भौंरा, कमलके कोमल पखड़ियोंको छेदकर बाहर नहीं हो सकता, फिर तो हाथी आकर कमलोंको खा जाता है, जिससें भौंराभी कमलोंके साथ नाशको प्राप्त होता है। इसप्रकार गन्ध विषयभी नाशका कारण है।

हे शिष्य ! देख जब एक एक विषयमें पड़कर

उपर्युक्त जंतुओंका इसप्रकार सत्यानाश होता है। तब पांचों विषयमें आसक्त होनेवाला क्यों नाशको प्राप्त न होगा ? इसलिये अपने कल्याणकी इच्छा करनेवालेको उचित है कि, पंच विषयमें दोष दृष्टि करके उसका त्याग करे।

प्रक्रिया तीसरी।

हे शिष्य !

अन्तःकरणपंचक और ज्ञानेन्द्रियपंचक तथा कर्मेन्द्रियपंचकमें जो अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवकी त्रिपुटी है जिसकरके उनका क्रिया होती है। उनकाभी तू जाननेवाला ज्ञाता साक्षी द्रष्टा है। इसलिये उनसेभी तू भिन्न है।

शिष्य–हे गुरु ! आपने कहा कि, अन्तःकरण आदिकमें अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव त्रिपुटी हैं जिससे उनकी क्रिया होती है। किन्तु अध्यात्म आदि किसे कहते हैं, सो मैं नहीं जानता, सो कृपा कर स्पष्ट करके कहिये जिससे मेरी समझमें आवे।

गुरु–हे शिष्य ! सुन अन्तःकरणकी त्रिपुटि इसप्रकार है।

अन्तःकरणकी त्रिपुटीका कोष्टक।

अध्यात्म.	अधिभूत.	अधिदैव.
अन्तःकरण	स्फूरण	विष्णु
मन	संकल्पविकल्प	चन्द्रमा
बुद्धि	निश्चय	ब्रह्मा
चित्त	चिंतन	नारायण
अहंकार	अभिमान	रुद्र

अन्तःकरण–अध्यात्म है, स्फुरण अधिभूत है और विष्णु अधिदैव है। इन तीनोंसेही अन्तःकरणकी क्रिया स्फूर्ति होती है। इन तीनोंमेंसे एकभी न हो तो स्फूर्ति नहीं होती।

मन–अध्यात्म है, संकल्प विकल्प अधिभूत

और चन्द्रमा अधिदैव है। इन तीनोंके मिलनेसे कल्पनारूपी क्रिया होती है।

बुद्धि—अध्यात्म है, निश्चय अधिभूत है. और ब्रह्मा अधिदैव है। इन तीनोंके मिलनेसे निश्चय किया जाता है। इनमेंसे एकभी कम हो तो निश्चय नहीं होवे।

चित्त—अध्यात्म है, चिन्तन अधिभूत और नारायण अधिदैव है। इन तीनोंके योगसे चिंतन-रूपी क्रिया होती है।

अहंकार—अध्यात्म है, अभिमान अधिभूत तथा रुद्र अधिदैव है। इन्हीं तीनोंके संयोगसे अभिमान होता है।

हे शिष्य! इन त्रिपुटियोंको तू जानता है इसलिये तू त्रिपुटी नहीं है। बरण इनका द्रष्टा साक्षी है। इसलिये इनमेंसे अहंता ममता त्यागदे। इसीप्रकार पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी त्रिपुटी यह है।

पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी त्रिपुटीका कोष्टक।

अध्यात्म.	अधिभूत.	अधिदैव.
श्रोत्र	शब्द	दिशा
त्वचा	स्पर्श	वायु
चक्षु	रूप	सूर्य
जिह्वा	रस	वरुण
घ्राण	गन्ध	अश्विनीकुमार

श्रोत्र–अध्यात्म है, शब्द अधिभूत तथा दिशा अधिदैव है। इन्हीं तीनोंके मिलनेसे सुननारूप क्रिया होती है। इन तीनोंमेंसे एकभी न्यून होवे तो सुनना नहीं होसकता।

त्वचा–अध्यात्म है, स्पर्श अधिभूत और वायु अधिदैव है। इन्हीके संयोगसे स्पर्शरूप क्रिया होती है।

चक्षु–अध्यात्म है, रूप अधिभूत और सूर्य्य अधिदैव है। यदि आंख और रूप दोनोही होवें और अधिदैव सूर्य्य न होवे तो किसप्रकारसे देख

पडेगा ? अर्थात् नहीं देख पडेगा । इसीप्रकार सूर्य्य तथा रूप होवें और चक्षु न हो; तबभी कुछ देख नहीं पड़ेगा तथा सूर्य्य और चक्षु होवें और रूप न होवे तब देखेगा किसको ?

इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियेकी सब त्रिपुटियोंको समझना चाहिये । हे शिष्य ! इन त्रिपुटियोंको तू जानता है इससे तू ये त्रिपुटियाँ नहीं है और इनसे होनेवाली सर्व क्रिया इनकी है इसलिये वे तेरी नहीं हैं। तू इन सबोंका द्रष्टा साक्षी है । इसीप्रकार पंचकर्मेन्द्रियोंके समझनेका कोष्टक यह है ।

पंचकर्मेन्द्रियोंकी त्रिपुटीका कोष्टक ।

अध्यात्म.	अधिभूत.	अधिदैव.
वाचा	वचन (बोलना)	अग्नि
पाणि	आदान (लेना देना)	इन्द्र
पाद	गमन (आना जाना)	उपेन्द्र
शिश्न	आनन्द (रतिभोग)	प्रजापति
गुदा	विसर्ग (मलत्याग)	यम ।

वाचा—इन्द्रिय अध्यात्म है, वचन अधिभूत है और अग्नि अधिदैव है। इन तीनोंके द्वाराही बोलना रूप क्रिया होती है। यदि इन तीनोंमेंसे एकभी न रहे तो बोलना रूप क्रिया होही नहीं सकती।

इसीप्रकार कर्मेन्द्रियोंकि सब त्रिपुटियोंको समझना। हे शिष्य! इन त्रिपुटियोंकोभी तू जानता है; इसलिये तू इनसे भिन्न इनका द्रष्टा है। इनसे होनेवाली क्रियाभी इन्हींकी है तेरी नहीं, इसलिये तू इनका साक्षी है।

प्रक्रिया चौथी।

हे शिष्य!

उपर्युक्त अन्तःकरण आदि पच्चीस तत्त्व हैं सो सब पंचमहाभूतके सात्विक, तामस और राजस भागमेंसे हुए हैं। इसलिये उनको महाभूतोंका कार्य्य जान और तू इनका साक्षी उनसे भिन्न है।

शिष्य—हे गुरु! उन पच्चीसों तत्त्वमेंसे कौन

कौन तत्त्व किस किस महाभूतके किस किस अंशसे हुए हैं ? सो कृपाकर कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! पंचभूतके सात्विक भागमेंसे पांच अन्तःकरण तथा पांच ज्ञानेंद्रिय हुए हैं । उन्हीं भूतोंके राजस भागमेंसे पांच प्राण और पंचकर्मेन्द्रिय हुए हैं । और भूतोंके तामस भागमेंसे पांच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) हुए हैं ।

शिष्य–हे गुरु ! आपने आकाशआदि पांच भूतोंके सात्विकादि अंशोसे पच्चीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति कही सो तो मैंने सुना । किन्तु एक एक भूतके एक एक सात्विक, राजस तथा तामस भागमेंसे जो जो तत्त्व प्रकट हुए हैं सो सब भिन्न २ स्पष्ट समझमें नहीं आये; इसलिये उनका स्पष्टीकरण करके बतलाइये ।

गुरु–हे शिष्य ! सुन मैं सब तत्त्वोंका स्पष्ट वर्णन तुझको सुनाता हूँ ।

पंचभूतोंके त्रिगुण अंशसे उत्पन्न हुए तत्त्वोंको बतानेवाला कोष्टक।

पंचभूत.	सात्विक भागमेंसे		राजस भागमेंसे		तामस भागमेंसे
	पांच अंतःकरण	पांच ज्ञानेन्द्रिये	पांच वायु	पांच कर्मेन्द्रिये	पांच विषय
आकाशके	अन्तःकरण	श्रोत्र	व्यान	वाचा	शब्द
वायुके	मन	त्वचा	मान	पाद	स्पर्श
तेजके	बुद्धि	चक्षु	उदान	पाणि	रूप
आपके	चित्त	जिह्वा	प्राण	शिश्न	रस
पृथ्वीके	अहंकार	घ्राण	अपान	गुद	गन्ध

आकाशके सात्विक भागमेंसे अन्तःकरण तथा श्रोत्र इन्द्रिय हुए हैं। आकाशके राजस भागमेंसे व्यान वायु तथा वाचा इन्द्रिय हुए हैं। और तामस भागमेंसे शब्द विषय हुआ है।

इसीप्रकारसे कोष्टकके अनुसार वायुआदि शेष चार भूतोंकेभी सात्विकआदि अंशोमेंसे मन, त्वचा आदि तत्त्वोंकी उत्पत्ति जानना।

शिष्य–हे भगवन्! आपने यह कहा कि, अन्तःकरण तथा पांच ज्ञानेन्द्रिय, भूतोंके सात्विक भागमेंसे प्रकट हुए है। इसका कारण क्या है? सो कृपाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! गीताका वचन है कि, "सत्त्वात्संजायते ज्ञानं" अर्थात् सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है। और अन्तःकरण, मन, बुद्धि आदिसे सुख, दुःख आदिका ज्ञान होता है। और श्रोत्र, त्वचा आदि पंचज्ञानेन्द्रियोंसे शब्द स्पर्शआदि पंच विषयोंका ज्ञान होता है। इसलिये ये सात्विक भागमेंसे प्रकट हुए हैं ऐसा समझना।

शिष्य–हे स्वामिन्! पंचप्राण और पंच कर्मेन्द्रियोंके, पंचभूतोंके राजस अंशमेंसे होनेका क्या हेतु है?

गुरु–हे शिष्य! जिस प्रकार रजोगुणसे क्रिया होती हैं उसी प्रकार पंचप्राण तथा कर्मेन्द्रियोंसेभी

क्रिया होती है, इससे इनकोभी राजस भागमेंसे उत्पन्न हुआ जानना ।

शिष्य–हे गुरु ! पंचविषयोंका तामस भागमेंसे होना कहनेका क्या कारण है ? सो कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! पांच विषयोंमें ज्ञान नहीं है । ये केवल जडरूप हैं, इसलिये इनको तामस भागमेंसे उत्पन्न हुआ जानना ।

इन सब तत्त्वोंको तू जानता है इसलिये ये पंच विषय तू नहीं । इन सब तत्त्वोंको तू जानता है इसलिये तू इनका द्रष्टा है । ये सब पंचभूतके हैं तेरे नहीं; तू तो अकर्ता, अभोक्ता इन्होंका साक्षी सदा इनसे भिन्न आत्मा है ।

प्रक्रिया पांचवी ।

शिष्य–हे गुरु ! आपने मेरे आत्माको अकर्ता अभोक्ता साक्षी कहा तब आप अब यह बतलाइये कि, इस देहमें कर्ता कौन है ? और सुखदुःखका

भोक्ता कौन है ? और किन किन साधनोंसे भोगता है ? सो आप कृपाकरके इसप्रकार कहिये जिसमें मै स्पष्ट समझ सकूं ।

गुरु–हे शिष्य ! इस देहमें पंच अन्तःकरण कर्ता भोक्ता हैं । पंचप्राण कर्ता भोक्ताके वाहन हैं । पांच ज्ञानेन्द्रिय उनके द्वार हैं ! पंच विषय उनके भोग हैं । और पंच कर्मेन्द्रिय उनके सेवक हैं । और तू इन सबोंका जाननेवाला द्रष्टा, साक्षी, अकर्ता, अभोक्ता, असंग आत्मा है ।

शिष्य–हे गुरु ! आपने साधारण रीतिसे मुझे यह समझाया कि, अन्तःकरण कर्ता भोक्ता है; पंचप्राण उनके वाहन हैं; ज्ञानेन्द्रिय द्वार और पंच विषय भोग हैं तथा कर्मेन्द्रिय उनके सेवक हैं । किन्तु पांचो तत्त्वोंका कौन कौन कर्ता, भोक्ता, किस किस वाहनके ऊपर बैठकर, किस किस द्वारमें आकर, क्या क्या भोग भोगते हैं और कौन कौन

सेवक उनकी सेवा करते ह ? सो भिन्न भिन्न करके स्पष्ट समझाइये ।

गुरु—हे शिष्य !

आकाशका तत्त्व अन्तःकरण कर्ता भोक्ता है । **व्यान** वाहनके उपर बैठकर, **श्रोत्र** द्वारमें आता है और **शब्द** विषयरूपी भोग भोगता है । अर्थात् कान द्वाराही अनुकूल अथवा प्रतिकूल शब्द सुन-नेसे अन्तःकरणमें सुख दुःखरूपी भोग होता है। और **वाचा** सेवक इसकी सेवा करता है । इस प्रकार अन्तःकरण कर्ता भोक्ता है और तू उसका द्रष्टा साक्षी आत्मा है ।

वायुका तत्त्व—**मन** कर्ता भोक्ता, **समान** वाहन पर बैठकर, **त्वचा** द्वारमें आकर **स्पर्श** विषय को भोगता है और **हाथ** पाणि) सेवक उसकी सेवा करता है । अर्थात् त्वचाको शर्दी लगे तो हाथ वस्त्र ओढता है, पसीना होतो पंखा हांकता है

इत्यादि सेवा करता है। त्वचापर कोमल चन्दन आदि अनुकूल स्पर्शसे अथवा कठिन तथा उष्ण आदि प्रतिकूल स्पर्शसे सुख तथा दुःख मनमें होता है। उसका जाननेवाला तू आत्मा सुखी दुःखी नहीं है तू तो उसका साक्षी निर्लेप है।

तेजका तत्त्व-बुद्धि कर्ता भोक्ता, **उदान बाहन**पर सवार हो **चक्षु द्वार**में आता है, और वहांसेही **रूप विषय**को ग्रहण करता है यही उसका भोग है, और **पाद** (पग) सेवक रूप दिखाने ले जाता है अर्थात आंखसे प्रिय अप्रिय रूपके देखनेसे बुद्धि सुखी दुःखी होती है। किन्तु तू इसका द्रष्टा इससे भिन्न निर्लेप है।

आप (जल) का तत्त्व **चित्त** कर्ता भोक्ता है. इसका **बाहन प्राण** है जिसपर बैठकर **जिह्वा-द्वार**में आकर **रस विषय**को भोगता है। और **शिस्न** (उपस्थेन्द्रिय) इसका सेवक रसका त्याग

करता है। अर्थात जिह्वासे मधुर आदि अनुकूल रस तथा कडवा आदि प्रतिकूल रस चखनेसे चित्त सुखी दुःखी होता है। तू तो केवल उसका द्रष्टा साक्षी और अभोक्ता है।

पृथ्वीका तत्त्व—**अहंकार** कर्ता भोक्ता है। **अपाप वाहन**पर बैठकर **घ्राण द्वार**में आता है और वहां **गन्ध विषय** भोगता है। इसका **सेवक गुदा** मलका त्याग करता है। अर्थात घ्राण द्वारा अतर आदि सुगन्ध तथा अन्य दुर्गन्धके ग्रहणसे अहंकार सुखी दुखी होता है। तू इसका जाननेवाला अकर्ता अभोक्ता है। तेरे आत्मामें सुख दुःख नहीं है तू सदा परमानन्दरूप इनका द्रष्टा साक्षी है।

इस प्रकारसे कर्ता भोक्ताकी प्रक्रिया निरूपण करके अब दूसरे प्रकारसे आकाशादि पांच महाभूतोंमें एक एकके पांच पांच तत्त्वोंका निरूपण कहते हैं।

प्रक्रिया छट्टी.

गुरु—हे शिष्य ! आकाशके पांच तत्त्व हैं।

१ अन्तःकरण, २ व्यान, ३ स्रोत्र, ४ वाचा और ५ शब्द.

शिष्य—हे स्वामिन ! अन्तःकरणादि पांच तत्त्वोंको आपने किस हेतुसे आकाशका बतलाया ? सो कृपाकर कहिये।

गुरु—हे शिष्य ! स्फुरणरूप **अन्तःकरण** हृदयाकाशमेंसे उत्पन्न होता है और वहांही लय होता है इसलिये आकाशका है।

व्यान सर्वांगमें आकाशके समान व्यापक है इसलिये आकाशका है।

श्रोत्र इन्द्रिय आकाशके गुण शब्दको सुनती है इसलिये आकाशकी है।

वाचा इन्द्रिय आकाशके गुण शब्दका उच्चारण करती है इसलिये आकाशकी है।

शब्द—तो प्रत्यक्ष आकाशका गुण प्रसिद्धही है। इसी प्रकार—

वायुके पांच तत्त्व हैं। १ मन, २ समान, ३ त्वचा, ४ पाणि और ५ स्पर्श।

शिष्य—हे गुरु! ये पांच तत्त्व वायुके किस प्रकार हैं सो कहिये?

गुरु—हे शिष्य! **मन** वायुके समान चञ्चल है इसलिये इसे वायुका जानना।

समान तो स्वयम् वायु है ही।

त्वचा—वायुके गुण स्पर्शको जानती है इसलिये वायुकी है।

पाणि—(हाथ) से वायुका गुण स्पर्श होता है इसलिये यहभी वायुका है।

स्पर्श—तो वायुका प्रसिद्ध गुणही है। इसी प्रकार—

तेजके पांच तत्त्व हैं। १ बुद्धि, २ उदान, ३ चक्षु, ४ पाद और ५ रूप।

शिष्य–हे भगवन्! इन पांच तत्त्वोंको तेजका तत्त्व कहनेका क्या कारण है?

गुरु–हे शिष्य!

बुद्धि–प्रकाशमान तेजोमय हैं इसलिये तेजकी है।

उदान वायु कंठमें अन्न जलका विभाग करके जठराग्निमें पहुंचाता है इसलिये तेजका है।

चक्षु इन्द्रिय, तेजके गुण रूपको देखती है इसलिये तेजकी है।

पाद–इन्द्रियमें विशेष करके उष्णता रहती है और तेजके गुण रूपको दिखाने ले जाती है, इसलिये तेजकी है। और—

रूप–तो प्रत्यक्ष तेजका गुणही है।

इस प्रकार हे पांच तत्त्व तेजके हैं जिसका तू साक्षी है। अब आपके तत्त्वोंका वर्णन सुन!

आपके पांच तत्त्व हैं। १ चित्त, २ प्राण, ३ जिह्वा, ४ शिश्न और ५ रस।

शिष्य—हे गुरु! ये पांचो तत्त्व जलके हैं। सो कैसे जानना? ये जलके क्यों कहलाये?

गुरु—हे शिष्य!

चित्त—जलके समान द्रवीभूत होता है इसलिये जलका भाग है।

प्राण वायु जलके विना रहता नहीं है इसलिये जलका अंश है। श्रुतिमें भी कहा है कि, "जलमय प्राण है"।

जिह्वा इन्द्रिय जलके गुण रसको ग्रहण करती है और सदा भींगी रहती है इसलिये जलकी है।

शिश्न इन्द्रिय मूत्ररूप जलके भागका त्याग करती है इसलिये जलका अंश है। और—

रस तो प्रत्यक्ष जलका गुण है।

इसी प्रकार—

पृथ्वीके पांच तत्त्व हैं। १ अहंकार, २ अपान, ३ घ्राण, ४ गुदा और ५ गन्ध।

शिष्य—हे गुरु! ये पांचो तत्त्व पृथ्वीके हैं; इसका निश्चय कैसे होवे? सो कहिये।

गुरु—हे शिष्य!

अहंकार—पृथ्वीके समान भारी और जड है इसलिये पृथ्वीका भाग है।

अपान वायु पृथ्वीके भाग मलको बाहर निकालता है इसलिये पृथ्वीका अंश है।

घ्राण पृथ्वीके गुण गन्धको जानता है इसलिये पृथ्वीका है।

गुदा इन्द्रिय पृथ्वीके भाग मलका त्याग करती है, इसलिये पृथ्वीकी है।

गन्ध तो पृथ्वीका गुणही है।

हे शिष्य! इसप्रकारसे पंच भूतोंके पच्चीस तत्त्वोंका साक्षी ज्ञाता तू आत्मा निर्विकार असंग है;

इसलिये न तू उपरोक्त तत्त्वरूप है, न वे तेरे हैं, न तू उनका है। तू सदा उनसे भिन्न उनका साक्षी है।

प्रक्रिया सातवीं.

शिष्य—हे गुरु ! पहली प्रक्रियामें अपने आकाशके पांच अन्तःकरण; वायुके पंच प्राण; तेजकी पांच ज्ञानेन्द्रिय; जलकी पांच कर्मेन्द्रिय और पृथ्वीके तत्त्व पंच विषय बतलाया है, किन्तु अब आपने (छट्ठी प्रक्रियाके अनुसार) उसीको दूसरी रीतिसे वर्णन किया है। इसका क्या कारण है ? प्रथम बताये हुएके विरुद्ध आपने अब बतलाया कि,—

आकाशके तत्त्व अन्तःकरण, व्यान, श्रोत्र, वाचा और शब्द हैं।

वायुके—मन, समान, त्वचा, पाणि और स्पर्श हैं।

तेजके—बुद्धि, उदान, चक्षु, पाद और रूप हैं।

आपके—चित्त, प्राण, जिह्वा, शिश्न और रस हैं।

पृथ्वीके—अहंकार, अपान, घ्राण, गुदा और गन्ध हैं ।

सो इस प्रकारसे भेदकरके बतानेका क्या कारण है।

गुरु—हे शिष्य ! यद्यपि वेदान्तके प्रकरण ग्रन्थोंमें अपंचीकृत पंच भूतोंके सत्रह तत्त्वोंसेही सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति कही हुई है तथापि मुमुक्षुओंको स्थूल रीतीसे समझानेके लिये भिन्न भिन्न प्रक्रियाओंद्वारा पंचीकरणकी सूक्ष्म देहके तत्त्वोंको कोष्टकमें निरूपण करके स्पष्ट बतलानेका प्रयत्न किया है और उसमें आकाशके तत्त्वोंको वायु आदि भूतोंमें मिलनेसे और वायु आदि तत्वोंके आकाश आदि तत्त्वोंमें मिलनेसे पहली तथा छट्ठी प्रक्रियामें भिन्न भिन्न रूपसे निरूपण किया है। किन्तु इन सबोंमें समझना इतनाही है कि, भिन्न भिन्न प्रकारसे निरूपण किये हुए वे तत्त्व सर्व भौतिक होनेके कारण अनात्मरूप दृश्य हैं और आत्मा उनसे भिन्न निर्विकाररूप है।

प्रक्रिया आठवीं ।

शिष्य–हे गुरु ! सूक्ष्म देहके जो ये तत्त्व आपने वर्णन किये सो इतनेही हैं कि, इनसे अधिक कुछ औरभी हैं ? अथवा इनसेभी कुछ कम हैं ? सो कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! वेदान्त शास्त्रकें बहुत स्थानोंमें पांच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, मन और बुद्धि मिलकर सत्रह तत्त्वोंकाही सूक्ष्म देह कहा है। कहीं कहीं मन और बुद्धिको एकही मानकर सोलही तत्त्व वर्णन किया है ! कहीं उपरोक्त सत्रह तत्त्वोंके साथ चित्त और अहंकारको मिलाकर उन्नीस तत्त्व बतलाया है। और कहीं तो अष्टपुरीमें सत्ताइस तत्त्वोंका सूक्ष्म देह कहा है ।

अष्टपुरीका वर्णन ।

शिष्य–हे गुरु ! आपने अष्टपुरीमें सत्ताइस

तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर बतलाया सो अष्टपुरी मेरी समझमें नहीं आयी सो स्पष्ट कहिये।

गुरु–हे शिष्य ! पांच ज्ञान इन्द्रिय एक पुरी, पांच कर्मेन्द्रिय दूसरी पुरी, चार अन्तःकरण तीसरी, पांच प्राण चौथी पुरी, पंचमहाभूत पांचवीं पुरी, अविद्या षष्ठ पुरी, काम सातवीं पुरी और कर्म आठवीं पुरी है। इन आठ पुरियोंके मिलकर सब सत्ताईस तत्त्व होते हैं उन सब तत्त्वोंका तू द्रष्टा है और वे तत्त्व दृश्य, जड़, विकारी और अनात्मा हैं।

शिष्य–हे गुरु ! जब इस प्रकारसे सूक्ष्म देह के भिन्न भिन्न संख्यक तत्त्व वर्णन किया है तब इनमेंसे निश्चय करके मुझे क्या मानना चाहिये ?। और एक सूक्ष्म देहके तत्त्वोंका भिन्न भिन्न संख्या बतलानेका क्या कारण है ?

गुरु–हे शिष्य ! तुझको जिन जिन प्रक्रियाओंसे ऐसा समझ पडे कि–सूक्ष्म शरीर जड पंच भूतोंका विकाररूप है और आत्मा असंग, अजर,

अमर, अक्रिय, सच्चिदानन्दरूप है; उन सब प्रक्रियाओंको मानना चाहिये। क्योंकि, किसी स्थानमें कार्य कारणकी एकतासे थोडे तत्व वर्णन किये हैं और किसी स्थानमें कार्य कारणको भिन्न भिन्न वर्णन करके अधिक तत्त्व कहा है। किन्तु वे सब तत्त्व दृश्य, अनात्म, परिणामी और जडही हैं। इसलिये उन सबोंका त्याग करना चाहिये और उनसे भिन्न द्रष्टा परिणाम रहित चैतन्यरूप आत्माको अपरोक्ष रूपसे दृढ निश्चय करके जानना चाहिये।

प्रक्रिया नवीं।

गुरु—हे शिष्य ! जैसे स्थूल देह अन्नमय कोश है और उससे तू आत्मा भिन्न है उसी प्रकारसे इस सूक्ष्म शरीरमें भी तीन कोश हैं। **१ प्राणमय, २ मनोमय** और **३ विज्ञानमय**। इन तीनों कोशोंसेभी तू भिन्न कोशातीत आत्मा है।

शिष्य–हे गुरु ! इन तीनों कोशोंका स्वरूप भिन्न भिन्न वर्णन करके मुझे समझाइये ।

गुरु–हे शिष्य ! पंच प्राण और पंच कर्मेन्द्रिय मिलकर प्राणमय कोश कहलाता है । अथवा पांच प्राण तथा पांच उपप्राण मिलकर भी प्राणमय कोश होता है ।

शिष्य–हे गुरु ! पांच प्राणको तो मैं जानता हूं किन्तु पांच उप प्राणको मैं नहीं जानता सो आप कृपा करके उनकी नाम, उनका क्रिया इत्यादि स्पष्ट कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! **१ नाग, २ कूर्म, ३ कृकल, ४ देवदत्त** और **५ धनञ्जय** यही पांच उप प्राण कहलाते हैं । इनमेंसे प्रत्येककी क्रिया अलग अलग है ।

नागसे डकार आता है ।

कूर्मसे आंख खुलती और बन्द होती है !

कृकलसे छींक होती है ।

देवदत्तसे जम्हुआई आती है—और

धनञ्जय समस्त शरीरमें रहकर शरीरको पुष्ट करता है। और मृत्यु पीछे मुर्देको फुलाता है।

इनके साथ मिलकर प्राण अपानादि दश वायुका **प्राणमय कोश** कहलाता है। और जिस प्रकार म्यान तलवारको ढांकता है उसे कोश कहते हैं उसी प्रकार यह प्राणमय कोश आत्माको ढाँकता है इसलिये इसे प्राणमय कोश कहते हैं। हे शिष्य! तू इसका द्रष्टा इससे भिन्न इसका साक्षी आत्मा है। इसी प्रकार—

प्राणमय कोशके भीतर मनोमय कोश है, पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन मिलकर **मनोमय कोश** कहलाता है। उससेभी तू भिन्न उसका साक्षी आत्मा है। इसी प्रकार—

मनोमय कोशमें **विज्ञानमय कोश** है सो पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि इन छः तत्त्वोंका बना हुआ

है। उसका जाननेवाला भी तू आत्मा उससे भिन्न है।

इसप्रकारसे सूक्ष्म देहके तीनों कोशोंसे तू भिन्न है। इसप्रकार जब कोश त्रयरूप सूक्ष्म देह तू नहीं है तो उनके कर्म सुख दुःख आदि तेरे कैसे हो सकते हैं ?

सुख दुःख धर्म अन्तःकरणके हैं। सुनना देखना आदि ज्ञानेन्द्रियोंके स्वभाव हैं, और बोलना लेना देना इत्यादि कार्य्य कर्मेन्द्रियोंके हैं तथा क्षुधा तृषा आदि धर्म प्राणके हैं। ये सब तुझमें नही हैं न तू उनमें है; इसलिये तू इनका साक्षी असंग निर्विकार आत्मा है।

इसप्रकारसे सूक्ष्म देहके कोष्टकमें जो नौ प्रक्रिया निरूपण किया है उन प्रक्रियाओंका विवेचन ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके उपदेशसे समझकर अपनेको देहसे भिन्न सद्रूप, चिद्रूप आनन्दरूप, अकर्ता, अभोक्ता, असंग, आत्मा निश्चय करना चाहिये। ऐसा निश्चय

करके भौतिक अनात्म सूक्ष्म देहमेंसे अहंता ममताका त्याग करना ।

इसप्रकार सूक्ष्म देहके कोष्टकका स्पष्टीकरण करनेके पश्चात् अब सूक्ष्म शरीरके स्वप्न अवस्था आदि दूसरे आठ तत्त्वोंका तेरहवीं चौपाईमें निरूपण करते हैं ।

चौपाई ।

स्वप्न अवस्था कंठ स्थान । मध्यमा वाचा प्रविविक्त भोग जान ॥ ज्ञान शक्ति सत्त्वगुणमान । उकार मात्रा तैजस अभिमान ॥

अर्थः—उपर्युक्त सूक्ष्म देहकी स्वप्नावस्था है ।

शिष्य—हे गुरु ! स्वप्नावस्था किसे कहते हैं ।

गुरु—हे शिष्य ! जाग्रत अवस्थामें देखे सुनेका जो संस्कार हृदयमें रहता है उसीके द्वारा निद्रावस्थामें गाडी, घोड़ा, मड़क, नदी, पर्वत,

समुद्र तथा स्त्री, कुटुम्बआदि व्यवहार, हानि, लाभ, सुख, दुःख आदि जो प्रपंच देखाजाता है, सो यद्यपि कुछ नहीं है तथापि प्रत्यक्षके समान देख पड़ता है; उसी अवस्थाको स्वप्नावस्था कहते हैं।

हे शिष्य ! तू इस स्वप्नावस्थाको जानता है इसलिये स्वप्नावस्था तू नहीं, और यह सूक्ष्म देहकी है इसलिये तेरी नहीं है। तू इसका साक्षी इससे भिन्न है।

इस स्वप्नावस्थाका स्थान कंठ है। कंठमें हिता नामक नाडी है उसीमें स्वप्नावस्था उपस्थित होती है। उस अवस्थामें मध्यमा वाचा और प्रविविक्त अर्थात् सूक्ष्म वासनामय भोग है। जिस प्रकार कपूर केशर आदि सुगन्धित वस्तुओंके रखने के पश्चात डब्बामेंसे उस वस्तुको निकाल लेनेपरभी उसमें सूक्ष्म सुगन्धि रहजाती है। उसी प्रकार स्वप्नावस्था में यद्यपि जाग्रतके सब स्थूल भोग निवृत हो जाते हैं तथापि जाग्रत के स्थूल भोगका संस्काररूप

सूक्ष्म भोग स्वप्नावस्थामें रहता है। जाग्रतमें जिस प्रकार अन्नादिके भक्षणसे शरीरमें पुष्टि होती है और हथियार वगैरहके लगनेसे शरीरसे रक्त निकलता है; उस प्रकार स्वप्नावस्थामें अन्नभक्षणसे पुष्टि नहीं होती न हथियार लगने से लोहू निकलता है। किन्तु केवल सुख दुःखका भोग होता है। इसलिये सूक्ष्म शरीरके भोगको सूक्ष्म भोग कहा है।

स्वप्नमें "ज्ञानशक्ति" कहने से आशय यह है कि, स्वप्नके पदार्थ जाने जाते हैं। और स्वप्नअवस्थामें सत्त्वगुण है।

शिष्य—हे भगवन् ! शास्त्रमें बहुत स्थानोंमें जाग्रत अवस्थामें सत्त्वगुण और स्वप्नावस्थामें रजोगुण वर्णन किया है और आप स्वप्नावस्थामें सत्त्वगुण तथा जाग्रतमें रजोगुण कहते हो इसका कारण क्या है ?

गुरु—हे शिष्य। जाग्रतमें सत्त्वगुण कहनेका कारण यह है कि, जाग्रत अवस्थामें विषयोंका ज्ञान

होता है तथा शान्ति, दांति आदि शुभ साधनोंकी उत्पत्ति होती है और अन्तःकरणमें मोक्ष प्राप्ति की इच्छा प्रकट होने पर ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाकर श्रवण मनन करे तो ज्ञानभी होता है। किन्तु मैंने तुझसे जाग्रतमें रजोगुण कहा इसका यह कारण है कि, जाग्रतमें विशेषकर क्रिया होती है और क्रिया रजोगुणका कार्य है। और स्वप्नावस्थामें सत्त्वगुण कहनेका यह कारण है कि, स्वप्नावस्थामें केवल विषयोंका ज्ञानही होता है किन्तु क्रिया कुछ होती नहीं है और ज्ञान सत्त्वगुणका कार्य्य है। गीतामेंभी इसी प्रकार कहा है।

स्वप्नमें प्रणव (ओंकार) की दुसरी मात्रा "उकार" है। तैजस नामक अभिमानी है जो सुख दुःखको भोगता है।

हे शिष्य। इन उपर्युक्त आठ तत्त्वोंका तू द्रष्टा है इसलिये ये तत्त्व तूँ नही है और स्वप्नावस्था आदिक तत्त्व तेरे नहीं। तू इनका साक्षी आत्मा है।

चौपाई ।

ए मलीने तेत्रीस तत्त्व जान । तूँ एनो द्रष्टा छो सुजान ॥ तू ए दृश्य तत्त्व नहिं होई । भिन्न भिन्न विचारो जोई ॥

टीका—प्रथम कहे हुए सूक्ष्म देहके अन्तःकरण आदि पच्चीस तत्त्व और अभी कहे हुए स्वप्नावस्था आदि आठ तत्त्व मिलकर सूक्ष्म शरीरके तेंतीस तत्त्व हुए । हे बुद्धिमान शिष्य ! तू इन तेंतीसों तत्त्वोंका द्रष्टा साक्षी है । ये सब तेरे दृश्य हैं तू नहीं है । इन सब तत्त्वोंको भिन्न भिन्न करके विचार करेगा तो तू इन सबोंसे भिन्न इनका द्रष्टा ज्ञान स्वरूप अलगही सिद्ध होगा और ये सब तत्त्व जड रूप हैं, ऐसा तुझे प्रत्यक्ष अनुभव होगा । इतना कहकर अब गुरु आगे के पन्द्रहवें दोहेमें दृष्टान्तद्वारा सूक्ष्म देहसे आत्माको भिन्न सिद्ध करते हैं ।

दोहा ।

घटद्रष्टा ज्यों घट नहीं, प्रगटही न्यारो देख।
त्यों देहद्रष्टा तू आत्मा, न्यारो भिन्न विशेष १५

अर्थ—जैसे घड़ाका देखनेवाला घड़ा नहीं है वह घड़ासे भिन्न है यह प्रत्यक्ष अनुभव है । इसीप्रकार जड़ तथा भौतिक सूक्ष्म देहका जाननेवाला तू आत्मा उस सूक्ष्म देहसे अलगही है ॥ १५ ॥

इसप्रकारसे स्थूल और सूक्ष्म देहसे भिन्न आत्माको स्पष्ट अनुभव कराकर अब गुरु तीसरी देह कारण शरीरसेभी भिन्न आत्माका अनुभव निरूपण करते हैं ।

चौपाई ।

त्रीजो कारण देह अज्ञान। तेनो तूं द्रष्टा पोते स्वरूप ज्ञान॥ तेथी विलक्षण तूँ आत्मा जान । ते तूँ नहीं अनुभव प्रमाण ॥ १६ ॥

टीका—एक स्थूल देह है, दूसरी सूक्ष्म देह है ।

इन दोनोंकी अपेक्षासे तीसरा कारण देह होता है। अज्ञानको कारण देह कहते हैं।

शिष्य–हे गुरु ! अज्ञानको कारण देह क्यों कहते हैं ?

गुरु–हे शिष्य ! अज्ञानमेंसे स्थूल और सूक्ष्म दोनों देह उत्पन्न हुई हैं इसलिये अज्ञान दोनो देहका कारण हुआ। इसीसे अज्ञानका नाम कारण देह हुआ है। सो हे शिष्य। जैसे स्थूल और सूक्ष्म देहका तू द्रष्टा है उसीप्रकार कारण देहकाभी तू द्रष्टा है। इसलिये अज्ञानरूप कारण देह तू नहीं।

शिष्य–हे भगवन्। स्थूल देहके सब तत्त्व प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं उसीप्रकार सूक्ष्म देहके तत्त्वभी अनुमानसे प्रसिद्धही जाने जाते हैं। और वे दृश्य हैं और मैं उनका द्रष्टा हूँ यहभी प्रत्यक्षही अनुभव होता है किन्तु आपने तीसरा कारण देहरूप जो अज्ञान कहा सो न तो प्रत्यक्ष देख पड़ता है न अनुमानसे जाना जाता है तब " अज्ञान दृश्य है

और मैं उसका द्रष्टा हूँ " यह कैसे अनुभव हो ? सो कृपा करके कहिये ।

गुरु—हे शिष्य ! तीसरे कारण देहरूप अज्ञानका तू तीन प्रकारसे द्रष्टा है ।

शिष्य—हे स्वामिन् ! किन तीन प्रकारोंसे मैं अज्ञानको जानता हूँ सो आप कहिये ?

गुरु—हे शिष्य !

प्रथम तू ऐसा कहता है कि, " मैं स्थूल तथा सूक्ष्म देहका जानता हूँ किन्तु मैं अपनेको नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ " इसीका नाम अज्ञान है । इस अज्ञानका तू द्रष्टा है क्यों कि, " मैं अपनेको नहीं जानता " यह कहना ज्ञान विना हो सकता नहीं, और " मैं अपनेको नहीं जानता " ऐसा जिसने जाना है वही तू ज्ञानरूप है । ज्ञान विना ऐसा जानना और कहना सम्भवही नहीं है । क्योंकि, यदि तू ज्ञानरूप न हो वरन अज्ञानी जडरूप हो तो

"मैं अपनेको नहीं जानता" ऐसा कहना तुझसे कैसे बने ? मिट्टीका घड़ा अज्ञानी और जडरूप है इससे वह कदापि नहीं कहता कि, "मैं अपनेको जानता नहीं हूँ"। इसलिये "मैं अपनेको नहीं जानता" ऐसा तेरा कहनाही अज्ञान है। और यह अज्ञान तेरा दृश्य है तू इसका द्रष्टा है।

दूसरे प्रकारसे तू अज्ञानका द्रष्टा इसप्रकार है कि, जब तू कहता है कि, "मैं अज्ञानी हूँ" तब ऐसा जाना जाता है कि, प्रथम तूने अज्ञानको दृश्य रूपसे जाना है फिर उसका अपनेमें अध्यारोप करके कहता है कि, मैं अज्ञानी हूँ। इससेभी अज्ञानका जाननेवाला ज्ञानरूप तू आत्मा अज्ञानसे भिन्न है। यदि तू अज्ञानसे भिन्न नहीं होता तो "मैं अज्ञानी हूँ" ऐसा कहनाही असम्भव था। जिस-प्रकार स्थूल देहके मोटा, पतला, काला, गोरा आदि धर्मोंको तू जानता है कि, यह मेरी देह काली है, गोरी है, मोटी है, पतली है इत्यादि। किन्तु उस

स्थूल देह और उसके धर्मोंका जाननेवाला तू उससे अलग है यह सिद्ध होता है। तिसपरभी तू भूलसे कहता है कि, "मैं मोटा हूँ, मैं पतला हूँ, काला हूं, गोरा हूं," इत्यादि और वैसाहि अपनेको मानताभी है। इसीप्रकार अज्ञानको दृश्यरूप जानकरभी "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अध्यारोप करता है। इसलिये तू विचार करके अनुभवसे देखेगा तो तू ज़ानेगा कि, इस अज्ञानका जाननेवाला साक्षी आत्मा है। तुझे अज्ञानसे लेशमात्रभी सम्बन्ध नहीं है। वह दृश्य है तू द्रष्टा है। यदि तू ज्ञानरूप आत्मा, अज्ञानका जाननेवाला, अज्ञानसे भिन्न न होवे तो "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा कहना और जानना कदापि सिद्ध न होवे। इसी प्रकार तीसरी रीति यह है कि,–

अज्ञानका कार्य्य "असतरूप तथा अभानरूप आवरण" को तू जानता है।

शिष्य–हे गुरु! असत आवरण तथा अभानरूप आवरण किसे कहते हैं? सो कृपा करके कहो।

गुरु—हे शिष्य ! जब तुझे कोई पूछता है कि, तू आत्माको जानता है ? तब तू इसप्रकार कहता है कि, "आत्मा है कहां कि, मैं उसको जानूं ?" अर्थात् आत्मा है भी नहीं और दिखाता भी नहीं है यही तेरे कहनेका आशय होता है। इसमें "आत्मा हैही नहीं" का नाम असदावरण है। और "आत्मा देख नहीं पड़ता" इसका नाम अभानावरण है। अब समझना यह है कि, "आत्मा है नहीं और भासताभी नहीं है" इनको जो जानता है सोई तू आत्मा है।

फिरभी जो तू ऐसा कहता है कि, "मैं आत्मा नहीं हूं, मनुष्य हूँ कर्ता भोक्ता हूं, मुझे कुछ प्रश्नोत्तर आता नहीं है" इत्यादि जो अज्ञानके कार्य्य हैं सो तू इन सबोंका जाननेवाला है। इसलिये अज्ञानरूप तीसरी कारण देहसे विलक्षण तू भिन्न आत्मा इसका साक्षी द्रष्टा ज्ञानरूप है। इस हेतु अज्ञान-

रूप कारण देहसे अपनेको भिन्न जानकर उसमेंसे अहंता ममताको त्याग दे।

शिष्य—हे गुरु! "अज्ञानरूप कारण देह मैं नहीं हूं" इसमें प्रमाण क्या है? सो आप कहिये।

गुरु—हे शिष्य! उपर्युक्त तीन प्रकारसे जो तुझे मैंने कारण देहसे आत्माको भिन्न सिद्ध करके विद्वानोंका अनुभव बतलाया है सोई अनुभव प्रमाण है। श्रुतिमेंभी आत्माको सूर्य्यके समान स्वप्रकाश बतलाया है। और अज्ञानसे भिन्न निरूपण किया है। इसलिये विचार करके यह निश्चय कर कि, "मैं कारण देहसे भिन्न आत्मा हूं।"

इसप्रकारसे कारण देहका निरूपण करके अब उसीकारण देहके आठ तत्त्वोंका वर्णन, आगेकी सतरहवीं चौपाईमें, करते हैं।

चौपाई।

सुषुप्ति अवस्था हृदय स्थान। पश्यन्ति

वाचा आनन्द भोग जान ॥ द्रव्य शक्ति तमोगुण मान । मकार मात्रा प्राज्ञ अभिमान ॥ १७॥

टीका—कारण देहकी अवस्था सुषुप्ति है ।

शिष्य—हे गुरु! सुषुप्ति अवस्था किसको कहते हैं ?

गुरु—हे शिष्य! जिस समय बुद्धि, इन्द्रिय आदि सर्व वृत्तिसंयुक्त कारण अज्ञानमें लय होकर रहता है; जिस समय जाग्रत और स्वप्नका भिन्न भिन्न व्यवहार तनिकभी प्रतीत नहीं होता ऐसी गाढ निद्राको सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। इसीप्रकार श्रुतिमेंभी सुषुप्ति अवस्थाका स्वरूप ऐसे वर्णन किया है कि, “ जिस निद्रामें शब्दादि विषयोंकी कुछभी कामना नहीं रहती और किसी प्रकारका स्वप्नभी देख नहीं पड़ता ” उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं ।

हे शिष्य! इस सुषुप्ति अवस्थाका तू द्रष्टा है

क्यों कि, सुषुप्तिसे जागनेपर तू ऐसा कहता है कि, " सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषं " अर्थात् मैं ऐसा सुखमें सोया कि, मुझे कुछभी खबर नहीं रही जागनेपर तुझे ऐसी स्मृति होती है। इससे जाना जाता है कि, सुषुप्ति अवस्थामें सुख है दूसरा कुछ नहीं है। और उसका सुषुप्ति अवस्थामें अनुभव करनेवाला तू आत्मा है। जिससे जागकर ऐसा कहता है कि, मैं सुखसे सोया। यदि सुषुप्ति अवस्थामें सुखके भाव तथा प्रपंचके अभावको तू अनुभव न करे तो जागनेपर ऐसा कैसे कहे ? कि, " मैं आज ऐसे सुखसे सोया कि, मुझे कुछभी मालूम नहीं हुआ "। शास्त्रमें कहा है कि, अनुभव किये हुएकीही स्मृति होती है। जैसे यदि कोई पुरुष काशी गया हो और वहां विश्वनाथके मन्दिर तथा मणिकर्णिकाका गंगाघाट देखकर उसने अनुभव किया हो, तबही उस पुरुषको अपने देशमें लौटनेंपर काशीमें देख हुए विश्वनाथके मन्दिर तथा मणिक-

णिंका घाटकी स्मृति होती है। इसीप्रकार सुषुप्तिके सुखको अनुभव करनेसेही जागनेपर उसकी स्मृति होती है।

दूसरा दृष्टान्त।

रात्रिमें पहरा देनेवाला सिपाही मार्गमें खड़ा बराबर पहरा देता रहे। सबेरा होनेपर यदि उससे कोई पूछे कि, सिपाही! रात्रिको दो बजे सड़कके ऊपरसे कौन गया था? तब सिपाही उत्तर देता है कि, उससमय तो कोईभी नहीं था! सिपाहीके इस उत्तरसे यह सिद्ध होता है कि, कोई दूसरा नहीं था किन्तु किसीके न होनेको देखनेवाला सिपाही था तबही वह कहता है कि, कोई नहीं था। यदि सिपाही स्वयम् उससमय न होवे तो "कोई नहीं था" ऐसा कौन कहे? इसीप्रकारसे "निद्राके समय मैंने कुछ नहीं जाना" इसप्रकार जागनेपर जो कहता है इससे सिद्ध होता है कि, निद्राके समय कुछ द्वैत

प्रपंच नहीं है किन्तु प्रपंचके अभावका जाननेवाला आत्मा स्वयम् है ।

शिष्य—हे गुरु ! यदि सुपुप्ति अवस्थाका जाननेवाला आत्मा है, तो वह निद्रांमेंही ऐसा क्यों नहीं कहता कि, "मैं सुपुप्ति अवस्थाको जानता हूं"? ऐसा न कहकर जागकरही सुपुप्तिका अनुभव वर्णन करता है इसका क्या कारण है ?।

गुरु—हे शिष्य ! सुपुप्ति अवस्थामें सर्व इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि अन्तःकरणका अज्ञानमें लय हो जानेके कारण उस समयके अनुभवको वर्णन करनेके करण इन्द्रियादिकोंके न रहनेसे तथा सुननेवाले द्वितीय पुरुषके अभावसे उससमयमें कहना नहीं हो सकता इसलिये सुपुप्तिका अनुभव जागकर ही कहा जाता है । जैसे—

दृष्टान्त ।

एक स्त्री कुवांपर पानी भरने गयी थी । पानी खैंचते समय डोरीमें लिपटनेसे उसके कानकी बाली

कूएँमें गिर गयी। तब वह स्त्री बालीके निकालनेकी चिन्ता करने लगी! इतनेमें दैवसंयोगसे उसके पहचानका कोई आदमी उधरसे आ निकला जिसको देखकर उस स्त्रीने उससे कहा कि, भाई! मेरी बाली पानी खींचते समय कूएँमें गिरगयी है यदि तू मेरी बाली निकालदे तो घर पहुंचकर मैं तेरे परिश्रमका प्रतिफल दूंगी। यह सुनकर वह पुरुष कूएंमें उतरा और डुबकी मारकर गहरे पानीके तहमें पहुंचकर हाथसे टटोलकर उसने बालीको ढूँढ निकाली। बालीको पाकर पानीके तहके नीचेंही उसे जो असीम आनन्द प्राप्त हुआ उसको वह वहां कह नहीं सकता है कि, बाली मिलगयी। क्योंकि, पानीमें यद्यपि सब इन्द्रियाँ काम कर सकती हैं किन्तु वाक्य इन्द्रियके देवता अग्निका जलसे प्रत्यक्ष विरोध है। और देवताविना इन्द्रियाँ काम करही नहीं सकती। इससे यद्यपि वह पुरुष बालीको पाकर अपने आनन्दको वाक्यद्वारा वर्णन नहींकर सकता है तथापि

उस आनन्दका अनुभव वह स्वयम् करता है और जलसे बाहर होकर कहता है कि, बाली मिली है। इसी प्रकार—

सिद्धान्तमें समझना चाहिये कि, सुषुप्तिमें सुखके अनुभवको कहनेके साधन मनवाणीके न होनेसे वह कहा नहीं जाता है किन्तु, उस समय प्रपंचके अभावको अनुभव करनेवाला स्वप्रकाश ज्ञानानन्दरूप आत्मा है जो जागकर मन वाणीआदि साधनद्वारा कहता है कि, "मैं ऐसे सुखसे सोया कि, कुछभी जान न सका"। इसलिये हे शिष्य! सुषुप्ति अवस्थाका द्रष्टा तू आत्मा उस अवस्थासे भिन्न साक्षी रूप है।

पूर्व निरूपण कियेहुए सुषुप्ति अवस्थाका स्थान हृदय है। पश्यन्ति[1] वाचा है। आनन्द[2] भोग है। द्रव्य[3]-

---

१ सूक्ष्म विचारके संस्कारको पश्यन्तिवाचा कहते हैं।

२ निर्विषय सुखके भोगको आनन्द भोग कहते हैं।

३ जाग्रतआदि व्यवहारके अनुकूल पदार्थोंके उत्पन्न होनेके कारणरूप शक्तिको द्रव्य शक्ति कहते हैं।

शक्ति है। गुण तमोगुण है और प्रणवकी तीसरी मकार मात्रा[1] है। तथा प्राज्ञ[2] अभिमान है।

हे शिष्य! इन सुषुप्ति आदिक आठ तत्त्वोंको तू जानता है इसलिये ये तत्त्व तू नहीं है। ये सब कारण देहके हैं इसलिये तेरे नहीं है। तू तो इन सबोंका साक्षी चैतन्य आत्मा स्वयम् आनन्दरूप है।

चौपाई।

ए कारण देहना आठ तत्त्व कही। बीजा तत्त्व एमां नहीं॥ तू एनो साक्षी सच्चिदानन्द। नित्यनिरन्तर परमानन्द ॥१८॥

अर्थ—पूर्व कह आये हैं कि, कारण देहके आठ तत्त्व हैं। १ सुषुप्ति अवस्था, २ हृदयस्थान, ३ पश्यंतिवाचा, ४ आनन्दभोग, ५ द्रव्यशक्ति, ६ तमोगुण, ७ मकारमात्रा, और ८ प्राज्ञ अभिमान। इनके

---

१ यहां "म" अक्षरही मात्रा है।
२ सुषुप्ति अवस्थाके अभिमानी चैतन्यको प्राज्ञ कहते हैं।

अतिरिक्त कारण देहमें दूसरे तत्त्व नहीं हैं। किन्तु इस देहमें "आनन्दमय" पाँचवाँ कोश है।

शिष्य–हे गुरु! आनन्दमय कोश किसको कहते हैं सो कृपा कर कहिये?

गुरु–हे शिष्य! कारण शरीररूप अविद्यामें जो मलिन सत्त्व है, उसमें प्रिय, मोद और प्रमोद नामक वृत्तियोंसे जो आनन्द होता है उसीको आनन्दमय कोश कहते हैं।

प्रिय, मोद, प्रमोदका अर्थ।

शिष्य–हे भगवन्! प्रिय, मोद और प्रमोद इन तीन पदोंका अर्थ क्या है?

गुरु–हे शिष्य! अपने अनुकूल (इष्ट) पदार्थोंको देखकर जो आनन्द होता है उसे प्रिय कहते हैं। और उस प्रिय पदार्थकी प्राप्तिसे जो सुख होता है उसे मोद कहते हैं तथा इष्ट पदार्थके प्राप्त होने पश्चात् उसके भोगनेमें जो सुख प्राप्त होता है उसे

प्रमोद कहते हैं। इस प्रकार विषयके सम्बन्धसे प्रिय, मोद और प्रमोदरूप तीन प्रकारकी वृत्तियोंका उदय होता है उसे आनन्दमय कहते हैं। और इस विषय-जन्य आनन्दके द्वारा शुद्ध निर्विकार आनन्दरूप आत्माका भान नहीं होता है अर्थात् उक्त प्रिय आदि तीनोंके आनन्द संयुक्त जो अविद्याका मलिन सत्व है उसीसे आत्मा ढका हुआ है इसलिये उसे आन-न्दमय कोश कहते हैं।

हे शिष्य ! इस आनन्दमय कोशका प्रकाशक सर्व आनन्दका मूलभूत आनन्दस्वरूप तू आत्मा उससे भिन्न है। तू कोश नहीं है वरन उसका साक्षी है। कारण देह तथा उसके तत्त्व और आनन्दमय कोशका द्रष्टा तू उससे भिन्न सच्चिदानन्द, नित्य निरन्तर (भेदरहित) निरतिशय (जिससे कोई बढकर नहीं है) परमानन्दरूप स्वयम् प्रकाश आत्मा है।

शिष्य–हे गुरु ! मैं सच्चिदानन्द किस प्रकार

हूँ ? सो जिस प्रकार यह बात स्पष्ट समझमें आवे वैसेही आप खूब समझाकर कहिये। सत्, चित् और आनन्द इन तीन पदोंका अर्थभी साफ साफ कहिये जिससे भली प्रकारसे मेरी समझमें आजावे।

गुरु–हे शिष्य! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं तथा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें तू आत्मा एक समान है इसलियें तू सत् है। और जाग्रतआदि तीनों अवस्थाका ज्ञाता है इसलिये चित् है और आत्मा सदाकाल परम प्रेमास्पदरूप है इसलिये आनन्द है।

शिष्य–हे गुरु! "तीनों अवस्थाओंमें मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ" इसका स्पष्ट अनुभव होनेके लिये आप उत्तम रीतिसे समझाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! जाग्रत् अवस्थामें, जागनेसे लेकर सोनेतक जितना व्यवहार होता है उन सबोंको तू जानता है। और जाग्रत् अवस्थामें शब्दस्पर्शादिका जो ज्ञान होता हैं तथा गमनआदि जो क्रिया

होती हैं उन सब व्यवहारोंको तू कहके बतलाता है; इसलिये जाग्रतमें जाननेवाला तू तद्रूप आत्मा है। यदि तू तद्रूप आत्मा न होवे तो जाग्रतके व्यवहारका तुझसे वर्णनही नहीं हो सके। न तू उन व्यवहारोंको जान सके। इसलिये तू तद्रूप है। और जाग्रत् अवस्थामें स्त्री, पुत्र, देह, इन्द्रिय आदिकोंसे तथा प्राणसेभी आत्मा अधिक प्रिय है इसलिये तू आनन्दरूप है। पंचदशीमें कहा है कि,—

श्लोक।

वित्तात्पुत्रःप्रियः पुत्रात्पिंडःपिंडात्तथेन्द्रियम्।इन्द्रियाच्चप्रियःप्राणः प्राणादात्मापरःप्रियः ॥ ६० ॥

पं० द० ब्रह्मानन्दगत आत्मानन्द प्र०।

अर्थ—धनसे अधिक पुत्र प्रिय है क्योंकि, पुत्रकी प्राप्तिके लिये; पुत्र प्राप्त होनेपर उसके लालन पालन और रक्षाके लिये; चोरी जुआआदि अपराधमें पकड़े गये पुत्रको बचानेके हेतु इत्यादि

रूपसे पिता पुत्रके लिये धनको खर्च कर देता है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि, धनकी अपेक्षासे पुत्र अधिक प्रिय है।

पुत्रसेभी अधिक प्रिय अपनी देह है क्योंकि, दुष्कालआदि संकटके समयमें पुत्रको बेचकर पुरुष अपने शरीरकी रक्षा करता है। इसलिये पुत्रसेभी अधिक शरीर प्रिय है।

शरीरसेभी अधिक इन्द्रियाँ प्रिय हैं। क्योंकि, जब कोई मारने आता है तो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको बचानेके लिये अपनी देहमें चोट लगने देता है किन्तु इन्द्रियोंको बचाता है। इससे देहसे इन्द्रियाँ अधिक प्रिय है।

इन्द्रियोंसेभी अधिक प्रिय प्राण है। क्योंकि, जब किसीको प्राणान्त दण्ड देनेका समय आता है तो वह गिड़गिड़ाकर कहता है कि, मेरे हाथ पगआदि इन्द्रियोंको काटलो किन्तु मेरे प्राणको छोड़दो।

इससे सिद्ध होता है कि, प्राणिको अपनी इन्द्रियोंसे प्राण अधिक प्रिय है।

प्राणसेभी अधिक प्रिय अपना आत्मा है। क्योंकि, जब मनुष्य अति दुःखी होता है तो कहता है कि, "मेरा प्राण निकल जाय तो मैं अत्यन्त सुखी होजाऊँ" इससे यह प्रत्यक्ष जाना जाता है कि, प्राणसेभी अतिशय प्रिय आत्मा है।

इन सब बातोंसे यहभी जाना जाता है कि, देह, इन्द्रिय और प्राणसेभी भिन्न आत्मा परमानन्दरूप है।

इसी प्रकारसे याज्ञवल्क्य मुनिने अपनी स्त्री मैत्रेयीको बृहदारण्य उपनिषदके मैत्रेयीब्राह्मणमें जो उपदेश किया है उसमें उन्होंने कहा है कि, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, देवता, लोक इत्यादिमें जो लोगोंकी प्रीति होती है वह केवल, इसलिये कि, वे सब आत्माके सुखके साधन हैं नहीं तो अपनेसे प्रतिकूल स्त्रीपुत्रआदि किसीको क्यों प्रिय नहीं लगते? इससे

अपना आत्माही सबसे अधिक प्रिय है, स्त्रीपुत्रआदि यथार्थ प्रियपात्र नहीं हैं। इससे जाना जाता है कि, आत्माही आनन्दरूप है दूसरा कुछ नहीं।

हे शिष्य! इसी प्रकार स्वप्न अवस्थामेंभी आत्मा है इससे सत्य है। और

स्वप्नको जानता है तथा जागनेपर स्वप्नका वृत्तान्त कहकर जनाता है इससे चित् है। तथा

स्वप्नमेंभी अपना आत्मा सबसे अधिक प्रिय है इससे आनन्द है।

इस प्रकार स्वप्नावस्थामेंभी तू सच्चिदानन्दरूप आत्मा है। इसी प्रकार—

सुषुप्ति अवस्थामें कुछ प्रपंच नहीं है। इस प्रपंचके अभावको जाननेवाला तू सुखरूप सच्चिदानन्द आत्मा है।

इस प्रकारसे विचार करनेसे तीनों देह स्थूल, सूक्ष्म और कारणका द्रष्टा; तीनों अवस्था जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिका साक्षी; और पांचों अन्नमय,

प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशोंका ज्ञाता, तू सच्चिदानन्दरूप आत्मा इन सबोंसे भिन्न स्वयंप्रकाश है ।

हे शिष्य ! इस प्रकारसे अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान पानेसेही तू मुक्त होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं है ! १५

"आत्माके अपरोक्षज्ञानसेही मोक्षकी प्राप्ति होती है इसकेलिये ब्रह्मनामावलिका प्रमाण देते हैं ।

श्लोक ।

अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनःपुनः ।
स एव मुक्तः सो विद्वानितिवेदांतडिंडिमः ॥

अर्थ—जिस प्रकार ऊपर निरूपणकर आये हैं; उसी प्रकारसे तीन देह, तीन अवस्था, पंचकोश, भोक्ता और भोग्यआदि सर्व विषयोंका वारम्वार विवेचन करके जो पुरुष निश्चय करके ऐसा समझता है कि, " मैं उनका द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ" वही मुक्त पुरुष है और वही विद्वान है । यही

वेदान्त शास्त्रका नक्कारा है अर्थात् वेदान्तशास्त्र इस बातको खुल्लमखुल्ला ढिंढोरा पीटकर कहता है ॥ १ ॥

पूर्व तीन देह, तीन अवस्था और पंचकोशआदिका वर्णन करके कहा कि, इन देहादिकोंका द्रष्टा आत्मा है । इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान निरूपण किया सो विशेष ज्ञान वृत्तिजन्य होनेसे परिच्छिन्न और नाशमान है; इसलिये इस विशेष ज्ञानद्वारा अज्ञानको निवृत्त करके अज्ञानके कार्य देहाध्यासकोभी निवृत्त करना; पश्चात इस विशेष ज्ञानकोभी कल्पित समझकर वास्तविक परिपूर्ण सामान्य ज्ञानरूप ब्रह्म स्वरूपमें स्थिति करके मोक्ष सुखको अनुभव करना । यही मोक्षका साधन है । इसलिये विशेष ज्ञानकोही चौथी देहरूपसे कल्पना करके उसका निरूपण उन्नीसवीं चौपाईमें करते हैं ।

चौपाई ।

चौथोमहाकारणदेहज्ञानस्वरूप । तेनो तू प्रकाशक शुद्ध स्वरूप ॥ तेहना

तत्त्व कहुँ सुजान। तेतूँ श्रवण कर विनकान ॥ १९ ॥

अर्थ—तीन देहकी अपेक्षा चौथी देह महाकारण कहलायी। अज्ञान तथा उसके कार्य्यरूप देहादिक प्रपंचकी निवृतिका बडा कारण होनेके कारण इसका नाम महाकारण हुआ। इस महाकारण देहका रूप ज्ञान है। अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ गुरुद्वारा वेदान्त शास्त्रके श्रवणसे "मैं द्रष्टा साक्षी" रूप जो विशेष ज्ञान मनकी वृत्तिमें उत्पन्न हुआ है उसीको चौथा महाकारण शरीर कहते हैं।

हे शिष्य। इस महाकारण देहकाभी प्रकाशक तू आत्मा शुद्ध स्वरूप है। तू निर्मल, सामान्य, नित्य सुख और ज्ञानरूप है। उक्त विशेष ज्ञान जाग्रतमेंही रहता है किन्तु स्वप्न तथा सुषुप्तिमें नहीं रहता; इससे वह अनित्य और परिच्छिन्न है परन्तु तू उस विशेष ज्ञानका प्रकाशक आत्मा अस्ति, भाति, प्रिय रूपसे आकाशके समान सर्वमें व्यापक है। इसलिये इस

सामान्य, पूर्ण स्वरूपका अनुभव करना और वृत्ति-जन्य विशेष ज्ञानको अज्ञानकी निवृत्तिका साधन जानना ।

शिष्य–हे गुरु ! आपने कहा कि, तू सामान्य ज्ञानरूप आत्मा अस्ति, भाति और प्रिय रूपसे जगतमें व्यापक है। सो अस्ति, भाति और प्रिय किसे कहते है ? और मैं उनसे किस प्रकार जगतमें व्यापक हूँ ? सो कृपाकर कहिये और जगत किसे कहते हैं सोभी कहिये ? ।

गुरु–हे शिष्य ! भूत भौतिक जितने पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंमें १ अस्ति, २ भाति, ३ प्रिय, ४ नाम और ५ रूप ये पांच अंश प्रतीत होते हैं।

अब उनको स्पष्ट रीतिसे समझानेके लिये तुझे इन पांचो अंशोंका अनुभव घटमें बतलाताहूँ; सो तू स्थिर चित्त होकर सुन और इसी प्रकार सर्व जगतमें अनुभव कर ।

"घटोस्ति" घट है कहा जाता है; तब घटमें

अस्तिता देख पड़ती है। और जब कहा जाता है कि, "अयंघटोभाति" यह घट भासता है, तब घट जाना जाता है और "घटः प्रियोस्ति" घट प्रिय है अर्थात् कामका है। जब ऐसा कहा जाता है तब घटमें प्रियता जान पड़ती है। "घट" नाम है तथा मुंह तंग, पेंदी बड़ी इत्यादि घटका रूप है। इसप्रकारसे घटमें अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप वर्तमान हैं। इसी प्रकार समस्त भूत भौतिक जगतमें ये अस्तिआदि पंच अंश वर्तमान हैं। इनमेंसे प्रथमके तीन अस्ति, भाति और प्रिय तो ब्रह्मके रूप हैं और शेष दो नाम और रूप कल्पित जगतके स्वरूप हैं। अर्थात ये दोनों (जगत्) मिथ्या हैं, इनमेंसे प्रथमके तीन अस्तिआदि घटपटआदि सर्व पदार्थोंमें समानही है किन्तु पिछले दो नाम और रूप सर्व पदार्थोंमें भिन्न भिन्न हैं। एकका नामरूप दूसरे पदार्थमें नहीं है और दूसरेका तीसरेमें नहीं; जैसे घटका नामरूप पटादिकोंमें नहीं है और पट-

आदिका नामरूप घटआदिकोंमें नहीं है । इससे नामरूप सर्व कल्पित है । किन्तु अस्ति, भाति और प्रिय यह तीनों अंश सर्व पदार्थोंमें सामान्यरूपसे वर्तमान है । ऐसा कोईभी पदार्थ ब्रह्माण्डमें नहीं है जिसमें ये तीन अंश वर्तमान न हों । इसीसे अस्ति, भाति, प्रिय रूपसे ब्रह्मकी व्यापकता सिद्ध होती है । जिस प्रकार देहमें आत्माका सच्चिदानन्दरूपसे अनुभव होता है, उसी प्रकारसे ब्रह्माण्डमें, अस्ति भाति प्रियरूपसे, ब्रह्मका अनुभव सिद्ध होता है । और अस्तिसे सत्, भातिसे चित् तथा प्रियसे आनन्द रूपसे ब्रह्म और आत्माकी एकताभी सिद्ध होती है । यह अनुभव सिद्ध है इसलिये तू सामान्य ज्ञानरूप आत्मा ब्रह्मरूप है । इसी ब्रह्मस्वरूप तेरे आत्माके अज्ञानके कारण नामरूपात्मक जगत् भासता है सो कल्पित और मिथ्या है । इस प्रकार निश्चय करना चाहिये ।

शिष्य–हे गुरु ! जिस प्रकार "सूर्य्य" अन्धका-

रका विरोधी है उसी प्रकार "ज्ञान" अज्ञानका विरोधी है। इसलिये ज्ञान और अज्ञान दोनोंका एक स्थानमें रहना असम्भव है किन्तु आपने कहा कि, "मेरा स्वरूप ज्ञानरूप है" फिर आप कहते हैं कि, "अपने आत्माके अज्ञानद्वाराही नामरूपात्मक कल्पित जगत् भासता है" सो इन दो प्रतिकूलोंका एकसाथ रहना कैसे सम्भव हो सकता है? सो कृपाकरके स्पष्ट समझाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! ज्ञान दो प्रकारका है। एक सामान्य ज्ञान, दूसरा विशेष ज्ञान। इनमेंसे सामान्य ज्ञान अज्ञानका विरोधी नहीं है किन्तु उलटा वही अज्ञानका प्रकाशक है। अर्थात सामान्य ज्ञानही अज्ञानको बतलाता है।

जिसप्रकार सूर्य्यका प्रकाश (धूप) काष्ट, तृण, सुई इत्यादि जगतके सब पदार्थोंपर पड़ता है। यद्यपि सूर्य्यकी धूपमें सामान्य रूपसे अग्नि है; किन्तु वह किसी पदार्थको जलाती नहीं है, वरन उन सब

पदार्थोंको दिखा देती है। किन्तु जब यही धूप सूर्य्यमूखी पत्थरपर पड़ती है तो चट उससे विशेष अग्नि उत्पन्न होकर काष्टादि सर्व पदार्थोंको जलादेती है। इसी प्रकारसे यद्यपि सामान्य ज्ञान सर्व मनुष्योंमें है तथापि "मैं अज्ञानी हूँ; मैं अपने आपको नहीं जानता; मैं मनुष्य हूँ; मैं कर्ता हूँ; मैं भोक्ता हूँ; मैं सुखी हूँ; मैं दुःखी हूँ;" इत्यादि अज्ञान और उनके कार्य्यभूत देहाध्यास आदिका विरोधी नहीं है। बरन उल्टा अज्ञान और उसके कार्य्यको यह सामान्य ज्ञान प्रकाशित करता है। यदि वह अज्ञानका विरोधी होता तो अज्ञान और उसके कार्य्यकी प्रतीतिहीं नहीं होती। किन्तु उनकी प्रतिति होती है इससे सिद्ध है कि, सामान्यज्ञान अज्ञानका विरोधी नहीं है। और तू आत्मा सामान्य ज्ञानरूपही है इससे तुझमें अज्ञानकृत कल्पित नाम रूपका भास सम्भव है।

जब ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु द्वारा वेदान्त शास्त्रके उपदे-

शसे ऐसा निश्चय होता है कि, "मैं सच्चिदानन्द आत्मा ब्रह्म हूं" तब इस बुद्धिमें उत्पन्न हुए विशेष ज्ञानसे उसी समय "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अज्ञान और उसका कार्यकर्ता भोक्तापनासे लेकर सर्व विपरीत अध्यासका नाश हो जाता है। इसीका दूसरा दृष्टान्त यह है कि,–

यद्यपि काष्टमें अग्नि सामान्य रूपसे सदा वर्तमान है किन्तु वह प्रत्यक्ष किसीको देखनेमें नहीं आता। और वह सामान्य अग्नि काष्टको जलाताभी नहीं है, क्योंकि, सामान्य किसीका विरोधी नहीं है किन्तु जब दो काष्टोंको एकसाथ मिलाकर रगडते हैं तो उसमेंसे विशेष अग्नि उत्पन्न होकर काष्टको जला देता है।

इसीप्रकार यद्यपि सामान्य ज्ञान प्राणीमात्रमें है; किन्तु उससे किसीका अज्ञान नष्ट नहीं होता है। परन्तु गुरुशास्त्रके उपदेशको विचाररूपी रगड़ लगता है, तब "मैं सच्चिदानन्दरूप ब्रह्महूँ" ऐसा विशेष

ज्ञान प्रकट होकर अज्ञान तथा उसके कार्य्यभूत देहाध्यास इत्यादिको निवृत्तकर देता है।

शिष्य—हे गुरु! सामान्य और विशेष दो प्रकारका ज्ञान माननेसे द्वैत्तापत्ति होती है और सिद्धान्तमें तो आत्मा अद्वितीय ज्ञानरूप एकही कहा है; इससे दो प्रकारके ज्ञानसे अद्वैत सिद्धान्तका बाध हो जायगा; इसलिये इसका समाधान स्पष्ट रीतिसे कहिये।

गुरु—हे शिष्य! अद्वितीय सामान्य ज्ञानरूप आत्माही अद्वैत और सत्य है। क्योंकि, गुरुशास्त्रके उपदेश द्वारा वृत्तिजन्य विशेष ज्ञान तो अज्ञान और उसके कार्य्य देहाध्यास इत्यादिको नाश करके आपभी निवृत होजाता है इसलिये द्वैत्तापत्ति नहीं आसकती।

इसपर एक दृष्टान्त कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुन!।

चौमासामें नदीका पानी मृत्तिका आदिके मिल-

नेसे मलिन होजाता है तब उसको साफ करनेके लिये उसमें निर्मलीका चूर्ण (कतकरेणु) डालते हैं। कतकरेणु उस जलमें मिलकर प्रथम तो उसमें मिले हुए मिट्टी इत्यादिको नीचे बैठा देता है पश्चात आपभी धीरे धीरे बैठ जाता है; जिससे जल मल रहित स्वच्छ होजाता है।

इसीप्रकार गुरुशास्त्रके उपदेशद्वारा उत्पन्न हुआ "विशेषज्ञान" अज्ञान तथा उसके कार्य्यको, निवृत्त करके आपभी निवृत्त होजाता है; फिर सामान्य ज्ञानरूप सत्य आत्माही अवशेष रहता है।

जिसप्रकार काष्ठके मथनसे, विशेष अग्नि निकलकर, रसोई आदिक कार्य्यको सिद्ध करके, अन्तमें आपभी सामान्य अग्निमें लय होजाता है; उसीप्रकार विशेष ज्ञान अज्ञानको निवृत्त करनेका कार्य्य करके, आपभी सामान्य ज्ञानमें लय होजाता है। इसलिये द्वैतापत्ति नहीं आती।

हे शिष्य ! इसप्रकार विशेषज्ञानरूप चतुर्थ महा-

कारण देहका प्रकाशक तू आत्मा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप है। अब उस महाकारण देहके तत्त्वोंको कहता हूँ सो तू विना कानके सुन !

शिष्य–हे स्वामिन् ! कानविना किस प्रकार सुना जावे ? इसका भेद आप स्पष्ट कहिये।

गुरु–हे शिष्य ! समझविना कानसे सुना हुआभी नहीं सुननेके तुल्य है। जैसे महाकारण देहके तुरीयआदि आठ तत्त्वोंका वर्णन किया है उनका निरूपण केवल कानसेही सुने और उनको एकाग्र चित्त होकर न सुनें तो उनका अनुभव कदापि नहीं हो सकता। इसलिये एकाग्रचित्त होकर विचार पूर्वक सुनकर अनुभव करनाही कान विना सुनना है। इसको इसी प्रकारसे समझना चाहिये कुछ कानबिना शब्द सुनना नहीं जानना चाहिये।

अब आगेकी वीसवीं चौपाईमें कारण देहके आठ तत्त्वोंका वर्णन करते हैं।

चौपाई

तुर्या अवस्था मूर्द्धनीस्थान । परा-
अवस्थाआनन्दावभासभोगजान ॥
इच्छाशक्ति शुद्ध सत्वगुणमान ।
अर्द्धमात्रा प्रत्यगात्मा अभिमान ॥२०॥

अर्थ—हे शिष्य ! तुर्याअवस्थाको चौथी अवस्था कहते है तू इसकाभी प्रकाशक तुर्यातीत है ।

शिष्य—हे गुरु ! तुरीय तो शुद्ध आत्माका नाम है और आप मुझे तुर्यातीत कहते हो तब मैं शुद्ध आत्मासे भिन्न कौन हूं सो कृपाकर बतालाइये।

गुरु—हे शिष्य ! तुरीय जो शुद्ध आत्मा है उसीको मैंने तुर्यातीत कहा है। क्योंकि, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाका जाननेवाला, एकरस आत्मा, तीनों अवस्थासे भिन्न है और उन्हीं तीनों अवस्थाकी अपेक्षासे तुर्या चौथी अवस्था कही जाती है । नहीं तो उन अवस्थाओंके नाश होनेसे तुरीया

नामभी नही कहा जा सकता। इसलिये तू तुर्यातीत है अर्थात तुरीय नामसे रहित है। इसीसे तुरीय रूप जो आत्मा सोई तुर्यातीत है।

तीन अवस्थाओंकी अपेक्षासे आत्माका नाम तुरीय हुआ है यह बात "तोटकवृत्त" नामक वेदान्त ग्रन्थमें कहा है सो सुन !

श्लोक।

यदि जाग्रत्प्रभृति त्रितयं, परिकल्पित-मात्मनिमूढधिया। अभिधानमिदं तदपेक्ष्य भवेत्, परमात्मपदस्यतुरीयमिति ॥१॥

अर्थ—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओंकी, मूढबुद्धिवालोंने, आत्मामें कल्पना कीहै; अर्थात अज्ञानियोंने ये तीन अवस्था आत्माकी मानी है; इसलिये उन तीन अवस्थाओंकी अपेक्षासे परमात्म पदका "तुरीय" नाम पड़ा है।१॥

इसलिये हें शिष्य! तीन अवस्थाओंके विना

आत्माका नाम तुरीय नहीं हो सकता; इसलिये उसी तुरीयकोही तुर्यातीत कहा है अर्थात आत्मा तुरीय नामसेभी रहित है। तुर्यातीत कहनेसे यह आशय नही है कि, तुरीयसे भिन्न कोई पाचवां आत्मा है।

जिसप्रकार पुत्र उत्पन्न होनेसे पुरुषका नाम पिता होता है और पुत्रके अभावसे पिता नाम तो जाता रहता है; किन्तु पुरुष तो वहीका वही रहता है; इसी प्रकार तुर्यातीत तुर्या अवस्थाका मूर्धनि स्थान है। मूर्धनि स्थान कहनेसे आत्माको मूर्धनि स्थानमेंही एक देशी कहनेका आशय नहीं है क्योंकि, आत्मा नखसे शिखा पर्यन्त समस्त शरीरमें व्याप्त है। किन्तु जिसप्रकार मूर्धनिस्थान शरीरमें सबसे उच्च और श्रेष्ठ स्थान है उसी प्रकार तुरीय आत्माका स्थान तुर्यातीत सबसे श्रेष्ठ है। इसीलियेही तुर्यातीतको तुरीयका मूर्धनि स्थान कहा है॥

इस महाकारण देहकी वाचा "परा" है।

शब्दोच्चारणकी प्रथम अवस्थाको परावाचा कहते हैं।

इस महाकारण देहका भोग आनन्दावभास है। गुरु और शास्त्रके उपदेशसे यथार्थ ज्ञान होजानेपर "मैं कृतार्थ हूं; मैं धन्य हूं; मेरा आवागमन निवृत होगया है" इसप्रकारके आनन्दका जो अनुभव होता है उसीका नाम आनन्दावभास भोग है।

ज्ञान होनेके पश्चात निर्विकल्प आनन्दके अनुभव करनेकी जो इच्छा होती है उसीका नाम इच्छा शक्ति है।

रजोगुण और तमोगुणके सम्बन्धसे रहित जो सत्य गुण है उसे शुद्ध सत्वगुण कहते हैं। सो यही शुद्ध सत्वगुण महाकारण देहमें वर्तता है इसलिये यह उसका गुण है।

इस अवस्थामें प्रणवकी अर्द्धमात्राही मात्रा है।

"मैं द्रष्टा हूं" इसप्रकारके अभिमानकोही प्रत्यगात्म अभिमान कहते हैं। सो महाकारण शरीरमें यही अभिमान रहता है।

हे शिष्य ! उपर्युक्त निरूपण किये हुए महाकारण देहके आठ तत्त्वरूप विशेष ज्ञानका प्रकाशक तू सामान्य पूर्ण ज्ञान स्वरूप आत्मा है ।

चौपाई ।

एवा सर्व मलीने व्याशी तत्त्वकही ।
तू एनो जाननार स्वप्रकाश सही ॥
अहंब्रह्मास्मि यह दृढ होई । एज सा-
क्षात्कार कहिये सोई ॥ २१ ॥

अर्थ—हे शिष्य । ऊपर कहे हुए स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण देहके तत्त्व सब मिलकर व्यासी तत्त्व हुए । अर्थात स्थूल देहके तेंतीस, सूक्ष्म देहके तेंतीस, कारण देहके आठ, वैसेही महाकारण देहकेभी आठ सब मिलकर (३३+३३+८+८=८२) व्यासी हुए । सो तू इन सब तत्त्वोंका जाननेवाला स्वयम् प्रकाश प्रत्यक आत्मा है । इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है । जब इनका इसी प्रकारसे

विचार करके ऐसा निश्चय होता है कि, "मैं उपाधि रहित शुद्ध ब्रह्म हूँ" उसीका नाम साक्षात्कार अर्थात अपरोक्ष ज्ञान है।

दोप्रकारका ज्ञान।

(अपरोक्ष और परोक्ष)

हे शिष्य ! ज्ञान दो प्रकारका है। १ परोक्ष और २ अपरोक्ष। इसमें अपरोक्ष ज्ञानकोही साक्षात्कार कहते हैं। इसमें पंचदशीका प्रमाण है।

श्लोक।

अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञान मेवतत् ॥
अहंब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः सउच्यते॥१॥

अर्थ–ज्ञान दो प्रकारका है। १ परोक्ष, २ अपरोक्ष। १° "ब्रह्म सत्यरूप है" इस प्रकारसे ब्रह्मको आत्मासे भिन्न जाननेका नाम परोक्ष ज्ञान है और २° "सो निर्विकल्प ब्रह्म मैं हूं" इसप्रकारसे ब्रह्मको अभेदरूपसे अनुभव करनेका नाम अपरोक्ष ज्ञान है। इसीको साक्षात्कारभी कहते हैं। १ ॥

जैसे किसीने कहा कि, "शक्कर मीठी है" तो उसकी बातपरसे शक्करको मीठी निश्चय करनेको शक्करका परोक्षज्ञान कहते हैं। और जब शक्करको खाकर स्वयम् उसके स्वादको अनुभव किया तो, उसके स्वादको जाननेका नाम शक्करका अपरोक्ष ज्ञान है।

इसी प्रकार शास्त्रद्वारा परमात्माको सतचित आनन्दरूप जाननेको परोक्षज्ञान कहते हैं और गुरु शास्त्रके अनुग्रहसे, विचार पूर्वक, सच्चिदानन्द ब्रह्मको अपना स्वरूप समझकर, अनुभव करनेको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं। २१॥

अब आगेकी बाईसवीं चौपाईमें चार देहसे भिन्नरूप आत्माके अपरोक्ष ज्ञानका फल निरूपण करते हैं।

चौपाई।

एवा चार देहथी न्यारो होय। तो हमणा मुक्तिसुख पामे सोय॥ सर्व

व्यापक सहुथी न्यारो। विवेक दृष्टि करी विचारो ॥ २२ ॥

टीका–हे शिष्य! "पूर्वोक्त निरूपण किये हुए स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण देहोंसे भिन्न चैतन्य आत्मा मेरा स्वरूप है"।

ऐसे दृढ बोधको धारण करके जो देहाध्यासका त्याग करे वह इसी शरीरमेंही मोक्ष सुखको प्राप्त हो जावे।

शिष्य–हे गुरु! भेद दृष्टिही केवल दुःखका हेतु है जिसकी निवृत्ति, वेदान्त शास्त्रमें प्रतिपादन किये हुए, अभेद ज्ञानरूप आत्मज्ञानसेही होती है; यह शास्त्रका सिद्धान्त है; किन्तु आपतो उससे विलक्षण आत्माको चार देहोंसे भिन्न निरूपण करते हौ, और आत्मासे भूत भौतिक प्रपंचको भिन्न कहकर उसको भिन्नही सिद्ध करते हौ। इसप्रकारके परस्पर भेदसे आपके कहने अनुसार भेद सिद्ध होता

है । इससे अद्वैत सिद्धान्तमें विरोध आता है । यह शंका मेरे मनमें आयी है सो आप कृपाकरके इसका समाधान कीजिये ।

गुरु—हे शिष्य ! जिस प्रकार ब्रह्म स्वरूप सत्य है उसी प्रकार यदि ब्रह्मसे भिन्न चार देहआदि भूत भौतिक प्रपंच सत्य होवें तो द्वैतसिद्ध हो । किन्तु जब वे देहादिक सर्व प्रपंच ब्रह्ममें कल्पित हैं तब द्वैत कैसे हो सकता है ? ।

जैसे यद्यपि रज्जुमें सर्प, दरार, मूत्रधारा आदिक कल्पित भासते हैं तथापि उन कल्पित सर्पादिकोंकी सत्ता रज्जुसे भिन्न नहीं है । जैसे सीपमें कल्पित रूपाआदि सीपसे भिन्न नहीं है । जैसे तंतुकी सत्ता पटसे भिन्न नहीं है जैसे सुवर्णसे आभूषणकी भिन्न सत्ता नहीं है । जैसे मृत्तिकासे घटआदिकी भिन्न सत्ता नहीं है । जैसे आकाशमें कल्पित श्यामताकी आकाशसे भिन्न सत्ता नहीं है । जैसे मरुथलमें कल्पित मृगजल (मृगतृष्णा) की सत्ता मरुथलसे

भिन्न नहीं है । उसी प्रकारसे कल्पित देहादिककी सत्ता आत्म सत्तासे भिन्न नहीं हैं । ये आत्मामें कल्पित असद्रूप भासते हैं । इन असद्रूप देहादि प्रपंचसे द्वैत कैसे सिद्ध होगा ? । एक अद्वितीय आत्माही सत्य है; इससे अद्वैत सिद्धान्तमें कुछ भेद नहीं आता ।

देहादि समस्त जगत असत्य है केवल एक आत्माही सत्य है । इस बातको श्रीकृष्ण भगवान भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें अर्जुनसे इसप्रकार कहते हैं ।

श्लोक ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः १६

अर्थ—हे अर्जुन ! यह असद्रूप जो भूत भौतिक नाम रूपात्मक जगत है इसका कभी सद्भाव नहीं है अर्थात यह सदाही असद्रूप है । एक अद्वितीय, अज, अमर, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, परिपूर्ण, निरवयव और निष्क्रिय आत्माकाही किसी कालमें

अभाव नहीं होता, केवल यही सदा सद्रूप है। इस प्रकारसे जगतको असत्‌रूप और आत्माको सत्‌रूपसे जाननेवाला ज्ञानी पुरुषोंनेही अन्त पाया है। अर्थात् जिसने ऐसा निर्णय किया है कि, जगत सर्व असत्य हैं और एक आत्माही सत्य है सोई ज्ञानी पुरुष मुक्त हुआ है।

शिष्य–हे गुरु ! यदि यह जगत असत्य है तो यह देख नहीं पड़ना चाहिये। और इस असत्यरूप जगतसे दुःख सुखकी प्राप्तिभी नहीं होनी चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं है–जगत देखभी पड़ता है और इससे सुखदुःखभी प्राप्त होता है तब इसे असत्य कैसे कह सकते हैं ? इसका खुलासा आप कृपाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य ! सत्यही देखनेमें आता है और सत्यसेही सुखदुःखकी प्राप्ति होती है, यह कोई नियम नहीं है। किन्तु असत्यभी देख पड़ता है और उससेभी सुखदुःखकी प्राप्ति होती है। जैसे यद्यपि स्वप्न

असत्य है तथापि वह देख पड़ता है और उससे सुखदुःख भी होता है। जैसे शुक्ति (सीप) में कल्पित रूपा और रज्जुमें कल्पित सर्प असत्य है, तथापि वे देख पड़ते हैं और उनसे सुखदुःखभी होता है। जैसे मृगतृष्णाका जल और आकाशकी नीलता असत्य हैं किन्तु देख पडते हैं। उसीप्रकार जगत असत्य होनेपरभी देख पड़ता है। इसप्रकारसे सत्य ही देख पड़ता हैं और असत्य नही देख पड़ता यह कोई बात नहीं है।

इसके अतिरिक्त ईश्वरकी माया द्वारा कल्पित रची हुई इस असद्रूप जगतकी प्रतीति भलेही हुआ करे। उसकी निवृत्ति करनेकी आवश्यकता ही क्या है? क्योंकि, ईश्वर रचित यह जगत किसीको बन्धन ही कहां करता है? जब जीव ईश्वररचित जगतमें सत्य बुद्धि करके अपने मनसेही द्वैत रच लेता है; तब वही उसीका रचित द्वैत इसे बन्धनका कारण हो जाता है। इसलिये इसको अपने रचित

प्रपंचकी निवृत्ति करनी होती है। ईश्वर रचित प्रपंचकी निवृत्तिकी क्या आवश्यकता है?।

शिष्य–हे गुरु! ईश्वर रचित जगत तो प्रत्यक्ष देहादि रूपसे देखनेमें आता है किन्तु इसमें जीव रचित द्वैत तो भासताही नहीं जिससे बन्धन होता है। सो वह बन्धनका कारण जीव रचित द्वैत क्या है? सो कृपा कर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! ईश्वररचित जो देह स्त्री पुत्र धन आदिक हैं उसमें अहंता ममता रूप दृढ अध्यास करना ही जीवरचित बन्धन तथा दुःखका कारण रूप जगत है।

यह देह किसीको बन्धन नहीं करती किन्तु इसमें अहंता ममतारूपी जीव सृष्टिही बन्धन करती है।

ईश्वर रचित मांसमयी स्त्रीके मर जानेसे यदि उस स्त्रीमें ममत्व न होवे तो किसीको दुःख नहीं होता है किन्तु उसमें जिस जिसने ममता बांधी है उनको अवश्य दुःख होता है। कोई कहता है यह

मेरी माँ है; कोई कहता है यह मेरी पुत्री है; कोई कहता है यह मेरी स्त्री है; कोई कहता है यह मेरी बहिन है; इस प्रकारसे भिन्न भिन्न जीवोंकी रची हुई, ममत्वरूप मनोमयी, स्त्रीका नाश होनेसे, ममता करनेवाले सभी दुःखी होते हैं और जिनने उसमें ममता नहीं बांधी हैं उन्हें दुःखभी नहीं होता।

जैसे किसीका पुत्र दूर देश गया हो और वहां वह जीवित होवे किन्तु कोई मसखरा ठग आकर उससे कह दे कि, तेरा पुत्र मरगया तो वह पिता अपने पुत्रको मरा जानकर अनेक प्रकारसे दुःखी होता और रुदन करता है। इसीप्रकार यदि वही पुत्र सचमुच मरगया हो और किसीने आकर कह दिया हो कि, तेरा पुत्र कुशलसे है; तब वह पिता इस झूठी खबरको पाकर भी मनही मन मग्न होता है। और जबतक कोई आकर ऐसा न कहे कि, तेरा पुत्र अमुक स्थानमें मरगया है तबतक उसे किसी प्रकारका शोक नहीं होता।

अब देखो कि, प्रथम अवस्थामें ईश्वर रचित पुत्र परदेशमें जीता जागता मौजूद है, तथापि मनोमय पुत्रकी मृत्युसे पुरुष कैसा दुःखी होता है ?। और दूसरी अवस्थामें ईश्वर रचित पुत्र मरगया है; किन्तु मनमें उसे जीवित मानकर दुःखी नहीं होता।

इसप्रकारसे हे शिष्य ! सर्वत्र मन रचित द्वैतही दुःखका कारण है। और यही बन्धनका कारण है। इसलिये आत्मज्ञानद्वारा उसी जीवरचित सृष्टिको निवृत करना चाहिये।

शिष्य–हे गुरु ! जब मन रचित द्वैतही बन्धनका कारण है तब तो मानस द्वैतकीही निवृत्तिसेही इसकी निवृत्ति हो जायगी। इसलिये मनको निरोध करनेके लिये योगाभ्यास करना चाहिये। आत्मज्ञानकी क्या आवश्यकता है ? सो कहिये।

गुरु–हे शिष्य ! ज्ञान विना केवल योगाभ्याससे यद्यपि तात्कालिक द्वैतकी निवृत्ति होती है, सही किन्तु वह निवृत्ति कितनी देरके लिये होती है ?

जितनी देरके लिये मन एकाग्र होता है। किन्तु जब समाधि उतरी तो फिर जगत वैसेका वैसेही भासता और दुःख सुखका कारण देख पड़ता है। इससे आत्मज्ञान विना केवल योगाभ्याससे आवागमनको प्राप्त करानेवाली द्वैतकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती है। श्रुतिमें भी कहा है कि, "ज्ञानविना जन्ममरणकी निवृत्ति नहीं होती है"। श्रुतिने यह नियम किया है कि, ।

- "ज्ञानसेही कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है"
- "ज्ञानविना मुक्ति होतीही नाहिं है"

श्वेताश्वतर उपनिषद्में कहा है कि, "जब मनुष्य मृगचर्मके समान आकाशको लपेटेगा तब देव (स्वयम्प्रकाश आत्मा) को जाने विना दुःखका अन्त होगा। अर्थात जिसप्रकार आकाशको कोई कभी लपेट नहीं सकता उसीप्रकार आत्मज्ञान विना केवल योगाभ्याससे जन्मादि दुःखके कारणरूप

मनोमय द्वैतकी अत्यन्त निवृत्ति कभी भी नहीं हो सकती।

शिष्य—हे गुरु! यह बाहरकी दृश्यरूप ईश्वर सृष्टि रूप द्वैतके नाश किये विना अद्वैत आत्मज्ञानकी उत्पत्तिही नहीं हो सकती? तब वह ज्ञान मानस द्वैतको कैसे निवृत कर सकेगा? सो कहिये।

गुरु—हे शिष्य! असद्रूप बहिर द्वैतको निवारण किये विनाही, केवल गुरु शास्त्रके उपदेश द्वारा, द्वैतको मिथ्यारूप जाननेसेही अद्वैतरूप आत्माका ज्ञान होता है। इसमें सन्देह नहीं है।

शिष्य—हे गुरु! बहिरद्वैतको मिथ्यारूप जाननेसेही तो अद्वैत ज्ञान होता नहीं है, वरन द्वैतके निवारणसेही अर्थात् बहिर जगतके लोप होनेसेही अद्वैत ज्ञान होता है। इसके विना अद्वैत ज्ञान होना असम्भव है इसलिये बाह्य द्वैतको निवारण करनाही चाहिये?

गुरु—हे शिष्य ! यदि बहिर द्वैतके निवारणसेही अद्वैत ज्ञान होता होवे तो, सुषुप्ति अवस्थामें तथा प्रलयकालमें प्रयत्न किये विनाही, सर्व प्राणियोंका, समस्त बाह्य द्वैत; निवृत्त हो जाता है; तो उन्हें भी अद्वैत आत्मज्ञान होना चाहिये। किन्तु उससमय ज्ञानके साधनरूप गुरु शास्त्र आदिके अभावसे अद्वैतज्ञान होता नहीं है और ज्ञान न होनेसे आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्तिरूप मोक्ष नहीं होती। इसलिये द्वैतके न देख पड़नेपरही अद्वैत ज्ञान होगया ऐसा कहनाही व्यर्थ है। और ईश्वर रचित बाह्य द्वैत कुछ अद्वैत ज्ञानका बाधक नहीं हैं, उलटा गुरुशास्त्रद्वारा अद्वैतज्ञानकी प्राप्तिमें सहायक है। और इसको मिथ्या जाननेके सिवाय दूसरे किसी उपायसे इसकी निवृतिभी नहीं हो सकती। इसलिये हे शिष्य तू ईश्वर सृष्टिके पीछे न पड़कर उसे जैसा है वैसाही रहने दे। तू उसके साथ द्वेष क्यों करता है?

जीवकृत द्वैत जो बन्धनका कारण है उसीको निवृत्त करनेका उपाय करके सुखी हो।

शिष्य—हे गुरु! जीवकृत द्वैत जो आपने प्रथम बतलाया सो उतनाही है कि, और कुछ है? यदि और भी कुछ है तो वह कितने प्रकारका है? सो सब कृपा करके कहिये।

गुरु—हे शिष्य! विद्यारण्यमुनिने (पंचदशीके द्वैत विवेक नामक प्रकरणके तेतालीसवें श्लोकमें) जीवकृत द्वैत दो प्रकारका वर्णन किया है। १ शास्त्रीय द्वैत और २ अशास्त्रीय द्वैत। उनमें १ प्रत्यक् ब्रह्मके एकत्व विचाररूपका वेदान्तशास्त्रसे श्रवण मनन आदि करनेको शास्त्रीय मनोमय द्वैत कहते हैं। सो इस शास्त्रीय द्वैतको जबतक सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप प्रत्यगात्माका अपरोक्ष दृढ बोध न होवे तबतक त्याग नहीं करना। वरन कामादिककी निःशेष निवृत्तिपूर्वक अद्वैत तत्त्वका दृढ बोध हुए

पश्चातही इसका त्याग करना । श्रुतिमें कहा है कि,—

सदसद्विचार में कुशल बुद्धिमान पुरुष, वेदान्त शास्त्रके अभ्यासद्वारा परोक्ष तथा अपरोक्ष ज्ञानमें तत्पर होकर, धानमेंसे चावलको निकाल लेनेके समान तत्त्वको ग्रहण करके, धानके भूसाके समान, समग्र शास्त्रका त्याग करे ।

यद्यपि इस श्रुतिमें विचारकी अवधि बतलायी है और दृढ़ बोध प्राप्त हुए पश्चात् शास्त्रीय द्वैतका त्याग करना भी बतलाया है तथापि बोध होनेके पश्चात् सद्विचार करनेका निषेध नहीं किया है। इससे दृढ़ बोध हुए पश्चात् भी पूर्व प्रवाहसे प्राप्त हुए शास्त्रीय विचाररूप, शास्त्रीय द्वैतका कल्पित रूप जानकरभी, उसके द्वारा सद्विचारमें कालक्षेप करनेसे कुछ हानि नहीं देख पड़ती ।

शिष्य—हे गुरु ? जब आप शास्त्र विचार आदिकको भी कल्पित कहते हो, तो उससे सांसा-

रिक बन्धन की निवृत्ति कैसे होगी? सो समझाकर कहो।

गुरु—हे शिष्य! जिस जगतको निवृत्त करना है वही कहां सत्य है कि, उसके निवृत्तिके लिये सत्य साधनकी अपेक्षा होवे। यहां तो "जैसा देव वैसी पूजा" के न्यायसे जिसप्रकार स्वप्न कल्पित सिंहके दर्शनसे स्वप्नकी निवृत्ति होती है। उसीप्रकार कल्पित संसारकी निवृत्ति होती है। इसीप्रकार:—

अशास्त्रीय द्वैत दो प्रकारका है। १ तीव्र, २ मंद! जिनमेंसे काम क्रोधादिको तीव्र तथा मनोराज्यको मन्द कहा है। सो इन दोनों द्वैतका तत्त्व बोध होनेके प्रथमही त्याग करना। क्योंकि, तत्त्वबोध होनेके लिये चार साधन बतलाया है। जिसमें—

१ विवेक है अर्थात् आत्मा सत्य और सब जगत अनित्य है। ऐसा दृढ निश्चय करनेका नाम विवेक है।

(२ **वैराग्य** अर्थात् इस लोक तथा परलोकके भोगोंमें अनिच्छा ।

(३ **षटसम्पत्ति** अर्थात

(१ शम अर्थात् वासनाका त्याग ।

(२ दम अर्थात् बाहरी इन्द्रियोंको विषयकी प्रवृत्तिसे रोकना ।

(३ उपरति अर्थात् प्रपंचसे निवृत्ति ।

(४ तितिक्षा अर्थात् शीतोष्णादि द्वन्द धर्मोंकी सहनशीलता ।

(५ श्रद्धा अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ गुरु तथा वेदान्तके वाक्योंमें विश्वास ।

(६ समाधान अर्थात् चित्तकी एकाग्रता ।

(ये छः मिलकर तीसरा साधन षटसम्पत्ति है और चौथी **मुमुक्षुता** अर्थात् संसारके बन्धनसे मुक्त होनेकी दृढ़ इच्छा है ।

इसप्रकार आत्मज्ञानके साधनोंमें तीसरा साधन

ष्ट सम्पत्ति कहा है उसमें प्रथमही शम कहा है। जिसके धारण करनेसेही काम क्रोधादिकके त्याग रूप वासनाका त्याग होता है। उसीप्रकार इसीके छट्ठे साधन समाधान द्वारा मनोराज्यके त्यागरूप चित्तकी एकाग्रताको वर्णन किया है। इसलिये प्रथम अवस्थामेंही कामक्रोधादिका त्याग करके बोध सम्पादन करना चाहिये।

शिष्य—हे गुरु! बोधकी प्राप्तिके लिये, बोध होनेके प्रथम कामक्रोधादि अशास्त्रीय द्वैतका त्याग करना आप कह रहे हैं सो ठीक है; परन्तु तत्त्व-बोधके पश्चात् उनको ग्रहण करे तो उसमें क्या हानि है? सो कहिये।

गुरु—हे शिष्य! बोध होनेके पश्चात् भी जीवन-मुक्तिके सुख प्राप्तिके लिये उनका त्याग करना उचित है। क्योंकि, कामक्रोधादिरूप क्लेशसे बंध-वान पुरुष जीवनमुक्तिका सुख प्राप्त नहीं कर

सकता। सो कामक्रोधादिके त्याग न करनेसे जीवन-मुक्तिकी असिद्धिही हानि है।

शिष्य–हे गुरु! इस जन्ममरण आदि दुःखोंकर पूर्ण जगतसे मैं बहुत खेदित हुआ हूं; इसलिये जन्ममरण आदि दुःखरहित सुखरूप मोक्ष विदेह मुक्ति मुझको प्राप्त होगी जिससे मैं कृतार्थ होऊँगा। जीवनमुक्ति मुझे नहीं चाहिये।

गुरु–हे शिष्य! यदि तू इस लोकके भोगकी लालसासे जीवनमुक्तिके सुखका त्याग करेगा, तब तो तू स्वर्गादिके सुखकी कामनामें विदेह मुक्तिको भी त्याग देगा। जिससे विदेहमोक्षके बदले तुझे स्वर्ग मात्र तुझे प्राप्त होगा किन्तु जन्ममरणरहित विदेह मुक्ति तुझे मिलेहीगी नहीं।

शिष्य–हे गुरु! स्वर्गका सर्व भोग नाशवंत है और सातिशय दोष कर पूर्ण है और भोगके समाप्त हुए स्वर्गसे अधःपात इत्यादि अनेक दोष करमें

स्वर्ग भरा हुआ है इसलिये मैं विदेह मुक्तिको छोडकर स्वर्गकी कभी इच्छा नहीं करूंगा, उसकी मुझे अपेक्षा ही नहीं है।

गुरु—हे शिष्य! जब स्वर्गमें क्षय और अतिशय आदि दोषोंको जानकर तू उसका त्याग करता है तब स्वभाविक दोषों करके पूर्ण, धर्मादि सर्व पुरुषार्थोंके नाश करनेवाले, अत्यन्त दुःखरूप कामक्रोधादिका त्याग क्यों नहीं करता?

शिष्य—हे गुरु! वैराग्यादि साधनों द्वारा मैंने अनर्थके कारणरूप अति कामादिकोंका त्याग किया है तब इस लोकके भोगमात्रके उपयोगी कामादिकोंको ग्रहण करनेमें क्या दोष है?

गुरु—हे शिष्य! आत्मतत्त्वको भी जानकर, यदि निःशेष कामक्रोधादिकोंका त्याग नहीं करके, उनके वश होकर, अपनेको विधि निषेधरूप शास्त्रकी आज्ञासे स्वतंत्र समझकर, धर्मशास्त्र प्रणीत पुण्य-

कर्मोंका भी त्याग करके, शास्त्रकी मर्यादाको छोड़कर, यथेच्छाचरणमें तेरी वृत्ति प्रवृत्त होगी तो, फिर तेरे विवेक विचार और ज्ञानकी माहिमाही क्या रहेगी?

हे शिष्य! यदि इस बातपर तू ऐसा कहे कि, "भले हुआ करो यथेच्छाचरणसे भी मेरी हानि क्या है?" तो इस विषयमें श्रीसुरेश्वराचार्य्यने अपने नैष्कर्म्यसिद्धि नामक ग्रन्थमें इसप्रकार लिखा है कि, जिस पुरुषने अद्वैत परमात्म तत्त्वको जाना है, यदि उसकी भी प्रवृत्ति यथेच्छाचरणमें होगी तो, अभक्ष्यको भक्षण करने आदिक अधर्ममें भी उसकी प्रवृत्ति होनेपर श्वान और तत्त्वज्ञानीका समान व्यवहार होनेसे, उसे श्वानकी समता मिलेगी और ज्ञानमें धूल पड़ेगी; इसलिये तत्त्वज्ञान प्राप्त पुरुषका यथेच्छाचारी होनाही नहीं सम्भवता। क्योंकि, पूर्वजन्मके किये हुए अधर्माचरणके प्रभावसेही इस जन्ममें भी अधर्ममें रुचि होकर यथेष्टाचरणमें प्रवृत्ति होती है।

किन्तु तत्त्वज्ञानीके पूर्वकर्म ऐसे पापमय हैं नहीं। क्यों कि, अनेक जन्मोंके अनन्त यज्ञदानादि पुण्य कर्मों द्वाराही सर्व पाप निवृत्त होकर जिसका अन्तः-करण शुद्ध होता है, उसीको ज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्ष मिलता है। इसीप्रकार श्रीकृष्ण भगवानने गीतामें कहा है। और श्रुतिने भी कहा है कि,—यज्ञ करके, अन्न धनादिको दान करके, मन तथा इन्द्रि-योंके निग्रहरूप तत्त्वद्वारा, अथवा कृच्छ चांद्रायण आदिरूप तप करके ब्राह्मण आत्मतत्त्वको जानने-की इच्छा करते हैं।

इससे हे शिष्य! अनन्त पुण्यकर्मोंके फलरूप तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुए पुरुषकी प्रवृत्ति पापकर्मोंके फलरूप यथेष्टाचरणमें कदापि नहीं हो सकती।

जैसे कोई पुरुष भूखसे अत्यन्त पीडीत हो तौभी विष मिश्रित अन्नको खानेमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी, तब मिष्टान्नको खाकर तृप्त हुआ पुरुष विष-

मिश्रित अन्नके खानेमें किसप्रकार प्रवृत्त होगा ? कदापि उसकी प्रवृत्ति ऐसे अन्नके खानेमें नहीं होगी।

इसीप्रकार जब मुमुक्षु अवस्थामें अपने अपने वर्णाश्रम धर्मोंमें पुरुषकी शास्त्रानुसार प्रवृत्ति होती है, उस समयमें भी यथेच्छाचरणसे वह निवृत्त होता है, तब जिसने अनन्त पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानपूर्वक ईश्वरके अनुग्रहसे सर्व लोकोंके भोगोंमें वैराग्यवान होकर आत्मज्ञानको प्राप्त किया है और उस ज्ञानसे वह सर्वप्रकार तृप्त हो रहा है, उसकी यथेष्टाचरणमें प्रवृत्ति कैसे होगी ? अर्थात वह कभी यथेष्टाचारी नहीं हो सकता।

हे मुमुक्षु ! तू तत्त्वज्ञानी है। जिस तत्त्वज्ञानको पाकर सनकादिक और शुकादिक महान पदवीको प्राप्त हुए हैं। उसी ज्ञानको प्राप्त करके तू सर्वसे अधम स्थिति कूकर, शूकरकी समताको प्राप्त होने की इच्छा क्यों करता है ?

इसलिये हे शिष्य ! तू इस तीव्र मनोमय द्वैत और

कामक्रोधादि सर्व दोषोंमें दोष दृष्टि करके इनका त्याग कर तथा सर्व अनर्थोंके मूलभूत मनोमय द्वैतरूप मनोराज्य अर्थात् मनके रचे हुए अनेक प्रकारके विषयोंके संकल्पोंको छोड़कर, ' सच्चिदानन्द परिपूर्ण परमात्मामें अभेद स्थितिरूप जीवनमुक्तिके सुखको सम्पादन कर।

भगवान् कृष्णचन्द्रने भी गीताके सोलहवें अध्यायके २१ वें श्लोकमें कामक्रोधादि आसुरी सम्पत्तिको बन्धन देनेवाला कहा है।

श्लोक।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ २१॥

अर्थ—श्वान शूकरादि नीच योनिरूप नरकमें जानेके तीन द्वार हैं। १ काम, २ क्रोध, ३ मोह। ये कामादिक मोक्षमार्गमें प्रवृत्त हुए मुमुक्षु पुरुषके

मोक्षरूप पुरुषार्थको नाश कर देते हैं। इसलिये काम, क्रोध और लोभको, विवेकपूर्वक आत्मविचारसे त्याग करना ॥ २१ ॥

कामक्रोधादिकोंकी निवृत्तिविना जीवनमुक्तिका सुख प्राप्त नहीं होता। इसलिये इनको निवृत्त करके, कल्पितरूप देहादि प्रपंचसे भिन्नरूप अद्वितीय आत्माका, गुरु शास्त्रके उपदेशसे अनुभव करनेसे, हे शिष्य! अभी इसी देहमें, विस्मृत कंठाभरणकी प्राप्तिके समान मोक्ष सुखको प्राप्त होगा।

इसप्रकारसे चौपाईके पूर्वार्द्धमें, कल्पितरूप सर्व देहादिक प्रपंचसे भिन्नरूप अद्वितीय आत्माके ज्ञान द्वारा मोक्षरूप आत्मसुखकी इसी देहमें प्राप्तिका निरूपण करके, अब गुरु, शेष आधी चौपाईमें, आत्माकी, अधिष्ठानरूपसे सर्व जगतमें, व्यापकता और उस कल्पित जगतसे निसंगता निरूपण करते हैं।

"सर्वव्यापक सहुथी न्यारो" इति।

हे शिष्य! सो आत्मा, नाम रूपात्मक समस्त

ब्रह्माण्डमें अस्ति, भाति, प्रियरूपसे व्यापक है। जिसप्रकार सुवर्ण सर्वभूषणोंमें व्यापक है। और सबसे न्यारा भी है। जिसप्रकार कल्पित सर्पसे रस्सी भिन्न है उसीप्रकार कल्पितरूप सर्व ब्रह्माण्डसे आत्मा भिन्न है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप तीनों देहोंमें द्रष्टारूपसे; और जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओमें साक्षीरूपसे, तथा अन्नमय आदिक पंचकोशोंमें प्रकाशकरूपसे, सच्चिदानन्दरूप आत्मा व्यापक है। और वही आत्मा, असद्रूप शरीरों, अवस्थाओं और कोशोंसे भिन्न है। इसप्रकारसे हे शिष्य! विवेक दृष्टि करके आत्माको एक अद्वितीय, स्वजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहित अनुभव कर ॥ २२ ॥

इसप्रकारसे गुरुके उपदेशको सुनकर उसका विचारपूर्वक मनन और निदिध्यासन करके शिष्यने

अपने स्वरूपका साक्षात्कार अनुभव किया। अब उसी, शिष्यके अनुभवको तीन दोहोंसे वर्णन करते हैं। इसमें भी प्रथम दोहामें आत्माको, चार देह तथा तीन अवस्थासे भिन्न कहते हैं।

शिष्य अनुभव वर्णन।

दोहा।

हुँ स्थूल सूक्ष्मकारण नहीं, नहीं महा
कारणरूप। नही जाग्रत स्वप्न सुपुप्ति,
हूँ पोते शुद्ध स्वरूप॥ २३॥

टीका–शिष्य कहता है कि, मैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण तथा विशेष ज्ञानरूप महाकारण देहभी नहीं हूँ। जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति अवस्थाभी मुझमें नहीं है। ये अवस्था बुद्धिकी हैं।

इसीप्रकार भागवतमें भी सातवें स्कन्धके सातवें अध्यायमें प्रह्लादका वचन है।

श्लोक ।

वुद्धं जागरणं स्वप्नःसुषुप्तिरिति वृत्तयः ।
ता ये नैवानुभूयंते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः॥

अर्थ—जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्था बुद्धिकी हैं। ये तीन अवस्था जिस करके जानी जाती हैं सो तीनों अवस्थाका साक्षी, इन अवस्थाओंसे भिन्न सच्चिदानन्दरूप उत्तम पुरुष है। इसलिये तीनों अवस्थाओंका प्रकाशक, शुद्ध, निर्मल, स्वयमप्रकाश, सामान्य स्वरूप मैं आत्मा हूँ ॥ २३ ॥

अब आगे दो दोहोंमें शिष्य, निष्प्रपंचरूप निर्विकल्प आत्माका अनुभव वर्णन करता है।

दोहा ।

तुर्या साक्षी तो कोयकहे, जो साक्ष्य
पदारथ होय । उपाधि रहित स्वरूप
हूं, नहीं साक्ष्य साक्षी दोय ॥ २४ ॥

टीका–यदि साक्ष्य (साक्षीसे जो जाना जाता है) पदार्थ, जो जाग्रत अवस्था आदि वृत्तियां तथा स्थूल सूक्ष्म देहादि पदार्थ आत्मासे भिन्न सत्य होवें तो आत्माका नाम साक्षी अथवा तुरीय होवे। किन्तु जब जाग्रदादि अवस्था तथा स्थूल आदि पदार्थ परमार्थसे सत्य नहीं हैं तब आत्माका तुरीय और साक्षी नाम कैसे हो सकता है ?

जिसप्रकार एकही पुरुषके भिन्न भिन्न सम्बन्धसे भिन्न नाम होते हैं, जैसे भांजाके सम्बन्धसे मामा, भतरीजाके सम्बन्धसे चचा, दामादके सम्बन्धसे स्वसुर; और पुत्रके सम्बन्धसे पिता इत्यादि; किन्तु उन सम्बन्धियोंके अभावमें मामा चचा इत्यादि नामभी लोप हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि, ये नाम सब कल्पित हैं; किन्तु पुरुष सत्य है।

इसीप्रकार तुरीय, साक्षी आदि नामभी मुझमें उपाधिके अपेक्षासे हैं वास्तविक नहीं हैं। मैं तो जाग्रतादि उपाधि रहित निरुपाधि स्वरूप हूँ।

मेरे शुद्ध स्वरूपमें साक्ष्य और साक्षी ये दोनोंही नाम नहीं हैं ॥ २४ ॥

दोहा ।

हूँ विश्व तैजस प्राज्ञ नहीं, नहिं तुर्या मुज माय। नहि द्रष्टा साक्षी नहीं, केवल शुद्ध हूँ भाय ॥ २५ ॥

टीका—जाग्रतका अभिमानी विश्व, स्वप्नका अभिमानी तैजस और सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ, ये तीनोंही मैं नहीं हूँ। और तुर्यावस्था तथा द्रष्टा साक्षी ये नामभी वास्तविक मुझमें नहीं है। क्योंकि, दृश्य और साक्ष्यकी अपेक्षासे द्रष्टा और साक्षी नाम पड़ता है; किन्तु जहां दृश्य और साक्ष्य पदार्थ ही नहीं हैं, वहां द्रष्टा और साक्षी कहांसे आयेंगे? इसलिये जब दृश्य और साक्ष्य पदार्थ यथार्थ नहीं हैं, तो द्रष्टा और साक्षी नामभी यथार्थ नहीं हैं। और जिस जिस स्थानमें द्रष्टा तथा साक्षीका वर्णन

किया है उस स्थानमें मात्र दृश्य आदिकी अपेक्षासेही कहा है। यथार्थ विचार करके अनुभव करनेसे ऐसा सिद्ध होता है कि; मैं निष्प्रपंच, स्वयम् प्रकाश, स्वतःसिद्ध, निरुपाधिक, शुद्धरूप मन वाणीसे अगोचर हूं॥ २५॥

इसप्रकार शिष्यका अनुभव सुनकर गुरु उसके अनुभवको औरभी दृढ करनेके लिये, मन वाणीके अगोचर, निष्प्रपंच, अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप दो दोहासे निरूपण करके सुनाते हैं।

दोहा।

ज्यां नहि पिंड ब्रह्मांड नहि, नहि एक त्यां दोय। प्रकृतिपुरुष ज्यां नहिं; स्वयंप्रकाश सत होय॥ २६॥

टीका—जहां पिंड अर्थात् शरीरका सम्बन्धमात्रभी नहीं है, वैसेही ब्रह्माण्डकाभी सम्बन्ध नहीं है। जिसमें एक दो आदिक गणनाभी नहीं है,

जिसमें प्रकृति अर्थात् माया और पुरुष अर्थात अविद्या उपाधिवाला जीव भी नहीं है; वह स्वयंप्रकाश, सत्य अद्वितीय स्वरूप ब्रह्म है ॥ २६ ॥

दोहा ।

वृत्तिव्याप्ति फलव्याप्ति विना, जेम-
नूं तेम स्वरूप । सदा उदित स्वप्र-
काश छे, मनवाणी विनरूप ॥ २७ ॥

टीका—हे शिष्य ! सो आत्मस्वरूप वृत्तिव्याप्ति तथा फलव्याप्ति नामक दोनोंके सम्बन्ध विना जैसाका तैसा स्वाभाविक स्वरूप है ।

शिष्य—हे गुरु ? वृत्तिव्याप्ति और फलव्याप्ति किसे कहते हैं सो कृपाकर कहिये ?

गुरु—हे शिष्य ! अन्तःकरणकी वृत्ति घटादि पदार्थोंमें व्याप्त होकर उसी पदार्थके आकारमें जो स्फुरण होती है उसे वृत्तिव्याप्ति कहते हैं । और चिदाभासकी जो पदार्थमें व्याप्ति (जैसे यह

घट है, इसप्रकारका ज्ञान होना) उसे फलव्याप्ति कहते हैं ।

अज्ञानकी निवृत्ति पूर्वक आत्माके विशेष ज्ञानकी उत्पत्तिमें मात्र वृत्ति व्याप्तिकी अपेक्षा है फलव्याप्ति की अपेक्षा नहीं है ।

जिसप्रकार स्वयंप्रकाश स्वरूप सूर्य्यको देखनेके लिये केवल निरोगी नेत्रकी अपेक्षा है, दूसरे दीपकादिकी अपेक्षा नहीं है । उसीप्रकार स्वयम्प्रकाश आत्माको जाननेके लिये वृत्तिव्याप्तिकी अपेक्षा है फलव्याप्तिकी अपेक्षा नहीं है ।

और बाहरी जो घटपटादिक पदार्थ हैं उनको देखनेके लिये वृत्ति व्याप्ति तथा फल व्याप्ति दोनोंकी अपेक्षा है । क्यों कि, यदि घट अन्धकारमें होवे तो उसे देखनेके लिये नेत्र और दीपक दोनोंकी आवश्यकता है । केवल नेत्रसे घट देख नहीं पड़ेगा । इसीप्रकार चिदाभास विना, केवल अन्तःकरणकी जड वृत्तिसे जड पदार्थ देखे नहीं जा सकते; क्यों

कि, अकेली वृत्ति जड है और जिन पदार्थोंको देखना है वेभी जड हैं। इसलिये जडसे जड भासता नहीं है। इसी हेतुसे पदार्थोंके जाननेके लिये फलव्याप्तिकी अपेक्षा है।

किन्तु अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक आत्मस्वरूपके अनुभवमें उसकी (फलव्याप्तिकी) अपेक्षा नहीं है वरन केवल वृत्तिव्याप्तिहीकी अपेक्षा है।

शिष्य—हे गुरु। जब वृत्तिसेही आत्मा जाना जाता है तो वृत्ति द्रष्टा हुई और आत्मा उसका दृश्य हुआ। इससे श्रुतिके कथनमें विरोध आयेगा क्यों कि, श्रुति आत्माको मनवाणीके अगोचर बतलाती है। इसका आप क्या समाधान करते हैं सो कृपाकर कहिये।

गुरु—हे शिष्य! मन कुछ आत्माको दृश्य पदार्थके समान विषय करके नहीं देखता है वरन—मनद्वारा विचार करके, अविद्या तथा देहाध्यासको

निवृत्त करते हुए आत्मा अपने आपको आपही प्रकाशता है।

जिसप्रकार पुरुष दर्पणद्वारा अपने मुखको आपही देखता है; किन्तु दर्पण मुखको नहीं देखता, दर्पण तो मुख देखनेका साधन मात्र है। मुख देख लेनेके पश्चात् दर्पण भी रखदिया जाता है। उसीप्रकार मुमुक्षु पुरुष मनकी वृत्तिद्वारा अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक स्वप्रकाश आत्माका अनुभव करके, वृत्तिकाभी त्याग कर देता है। इसीलिये वृत्तिव्याप्ति और फलव्याप्ति विना आत्माका स्वरूप ज्योंका त्यों स्वाभाविक वर्णन किया है। वह आत्मस्वरूप सदा स्वयमप्रकाश है।

शिष्य–हे गुरु! स्वयंप्रकाश किसे कहते हैं? सो मुझे समझाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! जगतके जितने घटपट आदिक पदार्थ हैं वे सब सूर्य्य दीपक आदिके प्रकाशसे देखे जाते हैं। इसलिये ये पदार्थ प्रकाश्य हैं और सूर्य्य दीपक आदि उनका प्रकाशक है। किन्तु जो आपही

प्रकाशरूप है, जो दूसरोंको प्रकाशता है, और जिसको प्रकाशनेवाला दूसरा कोईभी पदार्थ नहीं है उसे स्वयंप्रकाश कहते हैं ऐसा स्वयंप्रकाशरूप एक आत्माही है। आत्माके अतिरिक्त जो नाम, रूप, भूत, भौतिक प्रपंच है, सो सब परप्रकाश्य है। यद्यपि सूर्य्य, चन्द्र, तारा, विजली, दीपक, अग्नि, आदि पदार्थ आपही प्रकाशरूप जान पड़ते हैं क्योंकि, दूसरे घटादि पदार्थोंको प्रकाशते हैं तथापि वे आत्माको प्रकाश करनेको समर्थ नहीं है, वरन आत्माकेही प्रकाशसे सब सूर्य्य चन्द्रादिका प्रकाश देख पड़ता है। इसलिये वे सब जड परप्रकाश हैं और आत्मा स्वयंप्रकाश है।

स्वप्नावस्थामें भी सूर्य्यचन्द्रादि किसीप्रकाशके न होनेपर केवल स्वयंप्रकाश आत्माकेही प्रकाशसे अन्तःकरणका परिणामरूप सर्व प्रपंच देख पड़ता है। इसका अनुभव सबको है।

बृहदारण्य उपनिषद्में याज्ञवल्क्य मुनिने राजा

जनकसे इसी विषयको इसीप्रकार वर्णन किया है कि– सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि आदि स्वयंप्रकाश नहीं है किन्तु आत्माही स्वयंज्योति, स्वयंप्रकाश है। इसी प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्रने भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायके सत्रहवें श्लोकमें कहा है।

श्लोक।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्याधिष्ठितम्॥ १७॥

अर्थ–जानने योग्य जो परमात्माका स्वरूप सो सूर्य्य चन्द्रादि ज्योतियोंकोभी प्रकाश करनेवाला स्वयं ज्योतिरूप है। सो तमरूप अज्ञानसे भिन्न है और ज्ञानस्वरूप स्वयंप्रकाश है। सो स्वरूप मुमुक्षुओंको अमानित्यादि साधनपूर्वक आत्मज्ञान द्वारा जाना जाता है। वही सर्व प्राणिंमात्रोंके हृदय विषय बुद्धि, बुद्धिके धर्म तथा उसकी अवस्थाओंके प्रकाशक रूपसे स्थित है।

इस प्रकार श्रुति स्मृतिके प्रमाण तथा अनुभवसे आत्मा स्वयंप्रकाश सिद्ध होता है।

"अने मन वाणी विनरूप" कहनेसे आशय है कि, मन आदि चार अन्तःकरण और वाणी आदि दश इन्द्रियोंसे रहित आत्माका स्वरूप है। अर्थात् आत्मा इन्द्रियरूप नहीं है।

अथवा इसका आशय यह है कि, मन वाणीसे अगोचर आत्मा है। आत्मामें मन वाणीका गम्य नहीं है। इसी लिये उसे आवागमनसे गोचर कहते हैं।

शिष्य—हे गुरु! आत्मामें मन वाणीकी गति न होनेका कारण क्या है?

गुरु—हे शिष्य! जिस वस्तुमें जाति, क्रिया, गुण, नाम, रूप आदि शब्दप्रवृत्तिके कारणोंका सम्बन्ध होता है उसीमें वाणीकी प्रवृत्ति होती है। किन्तु आत्मा असंग, अगुण, अक्रिय, अरूप, अनाम है इसलिये इसमें जाति, क्रिया, गुण आदिका सम्बन्ध नही है, इसीलिये इसमें वाणी तथा मन

आदि पहुंच नहीं सकते। इस हेतु "मन वाणी बिन रूप" कहा।

इसंप्रकारसे दो दोहों द्वारा आत्माका निष्प्रपंच-पना वर्णन किया। अब महावाक्यके अर्थके निरू-पण करनेके लिये प्रथम एक दोहासे लक्ष स्वरूपमें तद्रूपता स्थित करनेकी रीति बतलाते हैं।

दोहा।

एक अभेद लक्ष्य जानी करी, रहिये
सुख स्वरूप। निरंतर महदाकाशवत,
पोते स्वयम् स्वरूप॥ २८॥

टीका—इस प्रकार (पूर्व निरूपण कर आये उस प्रकार) से मन वाणीके अगोचर अभेद लक्ष्य (जीव ईश्वर अभेद रहित लक्ष्यार्थरूप आत्मा) को अनुभवसे जानकर "रहिये सुख स्वरूप" अद्वैत सुखस्वरूपमें तद्रूपता स्थिति करके रहना। और जैसे महदाकाश निरंतर भेदरहित असंग सर्वत्र

व्यापक है, उसीप्रकार अपना स्वरूप जीव ईश्वर भेद रहित व्यापक, स्वयंप्रकाश और असंग, है ऐसा जानकर अपनेको निर्विकल्प, असंग, सुखरूप ब्रह्म निश्चय करना।

शिष्य–हे गुरु! आप जीव ईश्वरको एक कहते हो किन्तु इन दोनोंमें तो प्रत्यक्ष भेद और विरोध देखनेमें आता है। जैसे जीव सुखी, दुःखी, कर्ता, भोक्ता, जन्ममरणवाला, असमर्थ, पराधीन, अभिमानी तथा अल्पज्ञ है और ईश्वर अहंकार रहित, सुखदुःख रहित, समर्थ, स्वतंत्र जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका करनेवाला तथा सर्वज्ञ है। इसलिये इन दोनोंकी एकता कैसे होवे सो प्रमाण सहित समझाकर कहिये।

गुरु–हे शिष्य! तुझे यह शंका, तत्पद ईश्वर और त्वंपद जीवके लक्ष्यार्थको समझे विना हुई है। क्यों कि जीवमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख दुःख आदि संसारकी प्रतीति केवल अविद्या कल्पित अन्तःकरण

आदि उपाधिके अध्याससेही होती है। नहीं तो जीवका स्वरूप वास्तविक शुद्ध सच्चिदानन्द है। और कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदिक धर्म अन्तःकरणके हैं। जन्म, मरण देहका धर्म है. लक्ष्य स्वरूप आत्मामें इन सबोंका गन्धभी नहीं है। इसीप्रकार ईश्वरमें, जगतकी उत्पत्ति स्थितिलयकी क्रिया, मात्र माया उपाधि करके ही है। ईश्वरका वास्तविक स्वरूप तो शुद्ध, अद्वितीय, पूर्ण, सच्चिदानन्दरूप लक्ष्य है। इसलिये उपाधिके भेदका विचार किये विनाही केवल वाच्यार्थमें जीव ईश्वरका भेद प्रतीत होता है। सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषदमें "तत्त्वमसी" महावाक्यद्वारा अभेद निरूपण किया है। उस महावाक्यकोही प्रमाणरूप जानना चाहिये ॥ २८ ॥

उक्त महावाक्यमें तत्, त्वं और असि तीन पद है। इनका अभेद अर्थ दृष्टान्तपूर्वक आगेके उन्तीसवें दोहामें निरूपण करते हैं।

दोहा ।

तत्त्वं मठघटाकाशवत, असिपद महदाकाश । बे उपाधिभाग त्याग करी, पोते स्वयंप्रकाश ॥ २९ ॥

टीका—हे शिष्य ! जिसप्रकार एकही आकाश मठ उपाधिसे मठाकाश और घट उपाधिके कारण घटाकाश कहलाता है किन्तु मठ और घटकी उपाधि विना जो आकाश है उसे महदाकाश कहते हैं। उसीप्रकार एक अद्वितीय तत्त्व माया उपाधिसे तत् पद अर्थात् ईश्वर कहलाता है और अविद्या उपाधिसे त्वंपद जीव कहलाता है। ऐसा होनेपरभी दोनोकी उपाधि त्याग करके लक्ष्यमें असिपदसे दोनों (तत् और त्वं) की एकता "सो तू है," ऐसा एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध होता है। और ईश्वर तथा जीवकी भिन्नता केवल बड़ी और छोटी उपाधिके कारण है। ईश्वरमें समर्थपना और जीवमें

असमर्थपना मात्र माया और अविद्याकी उपाधिसे है।

जिसप्रकार मठमें बहुत आदमी बैठ सकते हैं, और उसमें हजारों मन अनाजभी भरा जा सकता है, किन्तु घटमें एक आदमी भी नहीं बैठ सकते न मनभर अनाजही अंट सकता है। यद्यपि मठ और घटमें बड़ी और छोटी उपाधिके कारणसे बडापन और छोटापन भासता है तथापि उनके भीतरके आकाशमें बडे और छोटेपनका भेद कहां है? घटाकाश और मठाकाशमें महदाकाश भेदरहित एकही है। इसीप्रकार तत्पद तथा त्वंपदका लक्ष्यार्थरूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म एकही है। उसमें भेद नहीं है।

इसलिये हे शिष्य! कल्पित जीव ईश्वरके वाच्यार्थरूप उपाधि (अविद्या तथा माया) को भागत्यागलक्षणासे त्याग करके, जीव ईश्वरके लक्ष्य शुद्ध स्वयंप्रकाशरूप अपने आत्मामें निष्ठा करके कृतार्थ हो।

शिष्य—हे गुरु! भागत्यागलक्षणा किसे कहते

है? और इसके अतिरिक्त यदि औरभी कोई लक्षणा हो तो उसका वर्णन कीजीये?

गुरु—हे शिष्य! लक्षणा तीन प्रकारकी है। १ जहती, २ अजहती, ३ जहदाजहती अथवा भाग-त्याग। इनमेंसे जिस लक्षणामें वाक्यके समस्त अर्थका त्याग होता है उसे जहती लक्षणा कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि, "गंगायां घोष: प्रतिवसति" अर्थात् गंगामें गायोंका बथान है। इस वाक्यसे गायोंका रहना गंगाके प्रवाहमें सिद्ध होता है। किन्तु गंगाकी धारामें रहना असम्भव होनेके कारण इस समस्त पदके अर्थको त्याग कर ऐसा अर्थ लगाया जाता है कि, गंगाके तटपर गायोंका बथान है। इसप्रकारसे जहती लक्षणा लगायी जाती है। सो यह जहती लक्षणा महावाक्यमें नहीं लगती। क्योंकि, इस लक्षणाके लगानेसे महावा-क्यके समस्त वाच्य अर्थका त्याग हो जायगा। जिससे महावाक्यसे पानेयोग्य शुद्ध चैतन्यका भी

त्याग करना होगा। इसलिये महावाक्यमें जहती लक्षणाके लगानेसे महा अनर्थकी प्राप्ति होगी।

इसीप्रकार अजहती लक्षणामें वाच्यार्थसहित उसके सम्बन्धी सर्व अर्थोंका ग्रहण होता है किसी अर्थकाभी त्याग नहीं होता। जैसे किसीने कहा "शोणो धावति" अर्थात् लाल दौड़ता है। अब यहां लाल दौड़ता है कहनेसे "लाल" गुणका दौड़ना अर्थ होता है। किन्तु गुणका दौड़ना सम्भव नहीं। इसलिये इसका अर्थ यह हुआ कि, लाल रंगका घोड़ा दौड़ता है। इसमें लाल गुणवाले आदि सर्वके साथ घोड़ाका ऊपरसे ग्रहण होता है। यह अजहती लक्षणाभी महावाक्यमें नहीं लग सकती क्योंकि, इसमें पदके वाच्यार्थ और उसके सम्बन्धी

विचारसागरमें अजहतीका लक्षण इसप्रकार लिखा है। "वाच्यजुत वाच्यके सम्बन्धीका जो ज्ञान होय ताहि ठौर लक्षणा अजहती मानिये" अर्थात्। वाच्यार्थसहित वाच्यके सम्बन्धीका जिससे ज्ञान होवे उसे अजहती लक्षणा कहते हैं। इस लक्षणामें वाच्यके अतिरिक्त अधिक अर्थका ग्रहण होता है।

दूसरे अर्थकाभी ग्रहण होता है, किन्तु महावाक्यमें तो तत् त्वंके वाच्यार्थको त्याग करके केवल लक्ष्यार्थको ही ग्रहण करना है। इसलिये इन दोनो लक्षणाओंसे भिन्न जहदाजहद् अथवा भागत्याग लक्षणाही महावाक्यमें लग सकता है। सो जहां पदोंके वाच्यार्थमें एक भागका त्याग करके एक भागका ग्रहण होवे वहां भागत्याग लक्षणा लगना कहते हैं। जैसे "सोयं देवदत्तः" अर्थात् "सो देवदत्त यह है" अब इस उदाहरणद्वारा इस लक्षणाके अर्थको स्पष्ट समझानेके लिये इतिहासकी रीतिसे समझाते हैं।

किसी ग्रामका रहनेवाला शिवदत्त नामक एक पुरुष काशीकी यात्रामें गया था। वहां उसको संयोगवश काशीराजके साथ मित्रता हुई फिर तो बहुत दिनतक उसने काशी वास किया पश्चात् अपने घर आया। इसके बाद बहुत वर्षोंके बीतनेपर तीव्र वैराग्यप्राप्त काशीका राजा अपने समस्त राजपाट आदि संसारी वैभवको त्याग कर, तीर्थाटन करने

निकला। सो फिरता फिरता दैवसंयोगसे वही काशी-राज विरक्त वेशमें शिवदत्तके ग्राममें पहुंचा। शिवदत्तके देवदर्शनका समय आनेपर जब वह देव मन्दिरमें गया तो वहां राजाको बैठा देखकर उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि, "काशीमें जिस राजाको मैंने देखा था सोही यह मालूम होता है" फिर शिवदत्तके मनमें सन्देह खड़ा हुआ कि,-काशीराज तो महा सत्तावान, अपराधियोंको दण्ड देने और योग्य पुरुषोंके सम्मानमें जागीरादि देनेमें समर्थ और स्वतंत्र तथा पवित्र काशीधामका वास करनेवाला है और यह पुरुष तो उसके लक्षणोंसे हीन भिक्षुक असमर्थ है। यह सब प्रकारसे पराधीन जान पड़ता है। यह काशीराज कैसे हो सकता है? इसप्रकारसे मनमें सन्देह होनेपर वह बार बार राजाकी ओर देखने लगा। देखते देखते काशीराजके शरीरके सब लक्षण उसे उस विरक्तके शरीरमें

देख पड़े, तब उसके मनमें कुछ कुछ विश्वास होने लगा कि, हो न हो यह काशीराजही है।

फिर उक्त विरक्तसे बातचीत करने और काशीसे तत्काल आये हुए लोगोंके मुखसे राजाके वैराग्य धारण करनेकी बातोंसे, शिवदत्तने निश्चय किया कि, जिस काशीराजको मैंने काशीमें देखा था, सोई यह विरक्त पुरुष है।

इसका तात्पर्य्य यह है कि, उस काशीप्रदेश, राजाकी उस समृद्धि और उस सामर्थ्य तथा उस काल आदिका राजाकी इस समृद्धि और इस देश, काल और असमर्थताके साथ समता की जावे तो कदापि तुल्यता नहीं हो सकती। इसलिये पूर्वके काशी देश, और कालादि तथा इस समयके देश काला-दिको छोड़कर; काशीमें देखे हुए राजाके शरीर-मात्रकी इस समयके शरीरमात्रके साथ तुलना करके शिवदत्तने राजाको पहचाना। इसप्रकारसे पहचाननेमें कुछभी विरोध नहीं आया।

इसीप्रकार महावाक्य "तत्त्वमसि" में तीन पद हैं। तत्, त्वं और असि। इस महावाक्यका वाच्यार्थ है कि, "सो तू है"। यहां तत्पदसे आशय ईश्वर है और त्वंपद जीवका वाचक है। सो इस स्थानमें तत्पद ईश्वरके गुण सामर्थ्य, सर्वज्ञता, परोक्षता, जगतकर्तापन, इत्यादि वाच्यार्थ उपाधिको त्याग करके; वैसेही जीवके असमर्थपणा, अल्पज्ञता, परिच्छिन्नता, इत्यादि वाच्यार्थ उपाधिको छोड़कर; तत्पदके लक्ष्य, एक, अद्वितीय, पूर्णानन्द, सर्वात्म इत्यादि और त्वंपदके लक्ष्य, कूटस्थ, साक्षी, असंग, सच्चिदानन्द इत्यादिकी एकता असिपदद्वारा करनेसे कुछ हानि नहीं है। किन्तु वाच्यार्थ उपाधिको लेनेसेही गड़बड़ होता है। इसलिये भागत्याग (जहदाजहती) लक्षणाके वाच्यार्थको छोड़कर लक्ष्यार्थको ग्रहण कर ब्रह्म आत्माकी एकता समझना चाहिये। महावाक्य इसी अर्थमें एकता निरूपण कर रहा है।

दूसरा दृष्टान्त ।

जिस प्रकार धानको उखलीमें कूटकर उसके भूसाको त्याग देते हैं और उसके सार रूप चावलको ग्रहण कर लेते हैं, जिससे क्षुधाकी निवृत्ति होती है । यदि इसप्रकार न करके कोई भूसा और कण को न त्याग कर सब धानकोही फेंक दे तो उससे क्षुधा निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती; वैसेही यदि भूसा और कणसहितही धानको खाने लगे तबभी वह खाया न जावे जिससेभी क्षुधाकी निवृत्ति असम्भव है । इसलिये जिसप्रकार कण और भूसाको अलग करके धानके साररूप चावलको लेनेसे क्षुधा निवृत्तिरूप सुखकी प्राप्ति होती है; उसीप्रकार महावाक्यके तत् तथा त्वं पद ईश्वर और जीवमेंसे भाग त्याग लक्षणाके द्वारा, उपाधिरूप वाच्यार्थको त्याग कर निरुपाधिक लक्ष्यार्थको ग्रहण करनेसे मोक्षरूपी आत्मसुखकी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

शिष्य—हे गुरु ! तत्पद ईश्वर तथा त्वंपद जीवमें वाच्यरूप उपाधि क्या है ? सो आप स्पष्ट कहकर फिर लक्ष्यरूप निरुपाधि तत्त्वको विस्तारसे समझा कर कहिये ।

गुरु—हे शिष्य !

दोहा ।

तत्पद उपाधि माया कही, त्वंपद
अविद्या जान । वे उपाधि दृश्य त्यागि
करी, पोते शुद्ध भगवान ॥ ३० ॥

टीका—तत्पद ईश्वरकी वाच्य उपाधि माया है ! उसीके द्वारा विराट, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत रूप तीन देह तथा वैश्वानर, सूत्रात्मा और ईश्वर ये तीन अभिमानी तथा उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय रूप तीन स्थिति इत्यादि ईश्वरकी उपाधि विस्तृत हुई है । यही तत्पदके वाच्यार्थ हैं । इसीप्रकार—

त्वंपद जीवकी उपाधि अविद्या है। जिससे जीवको स्थूल सूक्ष्म और कारण, तीन देह प्राप्त हुआ है और इन्हीके सम्बन्धसे जीव, विश्व तैजस और प्राज्ञ नामसे, तीनों देहका अभिमानी बना है। जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाओंको प्राप्त हुआ करते हैं। यही सब त्वंपद रूप जीवके अविद्या कल्पित वाच्यार्थ उपाधि हैं।

इसप्रकारसे तत्पद, त्वंपदकी विद्या और अविद्या रूप वाच्यार्थ उपाधिको त्याग करदेनेसे तू स्वयं आत्मा तत्पद और त्वंपदका लक्ष्यार्थरूप शुद्ध भगवान शेष रहता है। इसलिये सर्व उपाधिको छोड़कर स्वयं स्वरूप निज आत्माकोही जान।

भगवाननेभी भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें कहा है कि,—

श्लोक।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु

भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं, यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

अर्थात्–हे अर्जुन सर्व क्षेत्रों (शरीरों) में देह, प्राण, मन, इन्द्रियों और बुद्धि आदिको जाननेवाले क्षेत्रज्ञको "मेरा" रूप जान।

इसप्रकार अर्जुन प्रति भगवानने अपने साथ क्षेत्रज्ञकी एकता निरूपणकी है। इसीप्रकारसे— श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धके अठ्ठाइसवें अध्यायमें पुरंजनोपाख्यानमें, जीव ईश्वरकी एकताका ज्ञान दृढ होनेके लिये, ईश्वर, जीवके अपने साथ एकताका ज्ञान वर्णन करते हैं।

श्लोक ।

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्वभो। न नौ पश्यंति कवयश्छिद्रं जातु मनागमि ॥ १ ॥

अर्थ—हे जीव! मैं हूँ सो तू है। मुझसे तू भिन्न नहीं है। तू है सोई मैं हूँ। इसप्रकार तू अपनी और मेरी एकता विचार करके देख। जो ज्ञानवान पुरुष है सो अपने दोनोंमें किसी प्रकारके भेद मात्रकी कल्पनाभी नहीं करते हैं अर्थात् ज्ञानी जीव ईश्वरको एक रूप जानता है।

इत्यादि; श्रुति, स्मृति, पुराणादिमें इसीप्रकारसे अनेक दृष्टान्तों द्वारा जीव ईश्वरका अभेद निरूपण किया है। इसलिये हे शिष्य! तू अपने आत्माको ब्रह्मरूप जान ॥ ३० ॥

शिष्य—हे गुरु! मैंने शास्त्रमें सुना है कि, ब्रह्म तो जन्म, मरण, क्षुधा, पिपासा, शोक और मोह रूप छः उर्मियोंसे रहित है। और मुझमें तो उपरोक्त छः उर्मियां प्रत्यक्ष देख पड़ती हैं तो मैं ब्रह्मरूप कैसे हो सकता हूँ?

गुरु—हे शिष्य! तूने ब्रह्मको छः उर्मियोंसे रहित

जो सुना है सो सत्य है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। वही षट उर्मिरहित ब्रह्म तेरा प्रत्यगात्मा है। उस प्रत्यगात्माको देह, प्राण तथा मनसे भिन्न न जानकर, देहादिकके धर्मोंको अपने आत्मामें आरोपण करके, तूने अपनेको जन्मादिकवाला मान रखा है; सो तेरी भूल है क्योंकि, तेरे आत्मामें उनका गन्धभी नहीं है। इसका विवेचन मैं तुझे सुनाताहुँ सो तू सावधान होकर सुन ॥ २० ॥

दोहा।

जन्ममरण देहने कही, क्षुधा पिपासा प्राण। शोक मोह मनना धर्म, पोते ब्रह्म प्रमाण ॥ ३१ ॥

टीका—हे शिष्य! जन्म और मरण ये दो उर्मी स्थूल देहमें हैं। अर्थात् स्थूल देहही जन्म लेती और मरती है। इसका द्रष्टा आत्मा तू न जन्मता है न मरता है।

भूख और प्यास ये दो उर्मी प्राणके धर्म हैं क्यों कि, भूख प्याससे प्राण एकदम व्याकुल होता है। और अन्न जल विना प्राण रहता भी नहीं है। इसलिये ये दोनों उर्मी प्राणके हैं। सो उस प्राणका तू द्रष्टा है। इसलिये क्षुधा पिपासा तुझमें नहीं है।

शोक और मोह ये दो उर्मी मनके हैं क्योंकि, जब मन जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें रहता है तब शोक और मोह उत्पन्न होता है; किन्तु सुषुप्ति अवस्थामें जब मनका लय हो जाता है तब शोक और मोहकाभी पता नहीं रहता। इससे शोक और मोह मनकेही धर्म हैं। तू मनका द्रष्टा है इससे तेरा स्वरूप शोक मोह रहित है।

इसप्रकारसे छः उर्मी रहित तू आपही ब्रह्म है। "छः उर्मीरहित आत्माही ब्रह्मरूप है" ऐसा श्रुति प्रमाणसेभी सिद्ध है।

यजुर्वेदके बृहदारण्य उपनिषदमें याज्ञवल्क्य मुनिसे कहोल ब्राह्मणने प्रश्न किया है कि—"हे याज्ञवल्क्यजी!

साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्मस्वरूप जो सर्वांतर आत्मा है सो आप मुझे बतलाइये" इसपर याज्ञवल्क्य मुनिने उत्तर दिया कि,—"यह (अन्तःकरणकी वृत्तियोंका प्रकाशक) अपरोक्ष तेरा आत्माही सर्वान्तर है"। तब फिर कहोलने प्रश्न किया कि, "कौन सर्वान्तर आत्मा ?" तब याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया "जो क्षुधा तृषा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु नामक छः उर्मियोंसे रहित सर्वान्तर आत्मा है सो तू है"।

इसलिये हे शिष्य ! तू आतमा ब्रह्मस्वरूप है, शुद्ध और असंग है; कर्मोंके फलरूप सुखदुःखका भोक्ता तू नहीं है। इसलिये तू जीवन्मुक्त है।

शिष्य—हे गुरु ! कर्म कितने प्रकारका है ? उन कर्मोंका भोक्ता कौन है ? उन कर्मोंकी निःशेष (पूर्णरूपसे) निवृत्ति कब होती है ? और जीवन्मुक्त किसको कहते है ? सो सब स्पष्ट समझाकर कहिये।

गुरु—हे शिष्य ! कर्म तीन प्रकारका है। १ संचित, २ क्रियमाण, ३ प्रारब्ध।

१ अनेक जन्मोंके किये हुए जो पुण्य पापादिक कर्म, भोगेबिना, संस्कार रूपसे, अज्ञानसहित सूक्ष्म शरीरमें रहते हैं उन्हे संचित कर्म कहते हैं।

२ इस वर्तमान शरीरद्वारा होनेवाले पुण्य पाप कर्मोंको क्रियमाण कर्म कहते हैं।

३ अनेक जन्मोंके किये हुए संचित कर्मोंमेंसे जिन कर्मों द्वारा यह वर्तमान शरीर बना है और जिसके द्वारा इस शरीरमें सुख दुःखकी प्राप्ति होती है उसे प्रारब्ध कर्म्म कहते हैं।

यही तीन प्रकारके कर्म हैं जिनमेंसे संचित कर्म तो ज्ञान होतेही नाशको प्राप्त होता है। और ज्ञानीको कर्तापनेके अभिमानके न होनेके कारण जलमें कमल पत्रके समान क्रियमाण कर्मका लेपही नहीं होता। श्रुतिमें कहा है कि, "जिसप्रकार सिरकीकी रूई (भुआ) अग्नि दिखातेही भस्म हो जाती है; उसीप्रकार 'ज्ञान होतेही पुरुषके संचित और

आगामी, पुण्य पाप मिश्रित, सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णभी गीतामें कहते हैं।

श्लोक।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ४ ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे अर्जुन! सूक्ष्म काष्ठादिसे प्रज्वलित हुआ अग्नि जिसप्रकार सब काष्ठोंको जलाकर भस्म कर देता है; उसीप्रकार श्रवण मननके अभ्याससे उत्पन्न हुआ ज्ञानाग्नि, पुण्य पाप मिश्रितरूप; संचित और आगामी कर्मोंको जलाकर नाश कर देता है।

इसप्रकारसे परमात्माके ज्ञानद्वारा संचित तथा क्रियमाण कर्मकी निवृत्ति होती है।

अब शेष रहा प्रारब्ध कर्म सो शरीरके साथ है। अर्थात् यह शरीरही प्रारब्धरूप है। सो जबतक यह शरीर वर्तमान है तबतक प्रारब्ध कर्मके फल

रूप सुखदुःखका, स्थूल देह द्वारा, सूक्ष्म देहरूप, अन्तःकरण भोग करता है। और इसी देहको द्रश्य जानकर अपनेको अकर्ता, अभोक्ता, द्रष्टारूप जाननेवाला पुरुष जीवन्मुक्त होता है। इस विषयको आगामी बत्तीसवीं चौपाईमें निरूपण करते हैं।

चौपाई।

देहने माथे प्रारब्ध कर्म।
हुं पोते अभोक्ता परब्रह्म॥
एम जे जाने अनुभवयुक्त।
तेने कहिये जीवन्मुक्त॥ ३२॥

टीका—संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मोंमें संचित तथा क्रियमाण कर्मोंका ज्ञान होतेही नाश हो जाता है। और शेष सुखदुःख भोगरूप तीसरा प्रारब्ध कर्मका तो शरीरके ऊपर आधार है। अर्थात् वर्तमानशरीरमें प्रारब्ध कर्मका भोग होता है। इसमें स्थूल देह भोगायतन है; इन्द्रियां भोग भोग-

नेके साधन हैं; चिदाभास संयुक्त अन्तःकरण सुख दुःख भोगरूप प्रारब्धकर्मके फलका भोक्ता है। सो प्रारब्ध कर्म भोगेविना निवृत्त नहीं होता। "भोगसेही प्रारब्धकर्मका नाश होता है" यह शास्त्रका वाक्य है।

ज्ञानी अथवा अज्ञानीकी देह प्रारब्धकर्मको भोगनेके लियेही उत्पन्न हुई है। इसलिये प्रारब्धकर्मका फलरूप सुखदुःख भोगे बिना किसीका छुटकारा नही है। यद्यपि ज्ञानीको सुखदुःखरूप भोगसहित देहकी अपेक्षा नहीं रहती है तथापि जहांतक प्रारब्धके भोगका वेग है, वहांतक जो सुखदुःखादिक भोग होनेवाला है सो अवश्य होगा वह नहीं टल सकता। क्योंकि, प्रारब्धकर्म उसी कर्मका नाम है जो कर्मफल देनेको प्रवृत्त होगया है सो फल दिये बिना शान्त नहीं होता है।

जैसे—कोई पुरुष अपनी तीरन्दाजीकी कुशलताकी परीक्षा करनेके लिये किसी वृक्षके किसी

पत्तेको निशाना बनाकर तीर चलावे। और जब वह तीर पत्तेको ठीक निशानेपर बेध कर आगे बढ़े, उससमय उस तीरन्दाजके मनमें इसप्रकार विचार आवे कि अब यह तीर आगे न जावे तो ठीक हो। यद्यपि उसके मनमें ऐसा विचार तो आता है तथापि उसका विचार अपने स्थानहीपर रह जाता है अर्थात् उसके बिचारानुसार नहीं होता क्योंकि, बाणमें जितना वेग है वहांतक जाकरकेही वह शान्त होगा। वेगके समाप्त होनेपरही वह गिरेगा। बीचमें चाहे कितनाभी विचार किया जाय किन्तु वह तीर नहीं रुकेगा। हां तीरन्दाजके तरकशमें जो तीर शेष रह गया है उसपर उसका अधिकार है। उसको वह चाहे किसीके उपदेशसे फेंक दे, जला दे या और प्रकारसे नष्ट करदे सब कुछ करनेको वह स्वतंत्र है; किन्तु हाथसे छुटे हुए बाणको रोकनेमें उसकी शक्ति काम नहीं करती। उसीप्रकार ज्ञानी अपने संचित और क्रियमाण कर्मोंको ज्ञानाग्निसे

नाश कर देनेमें समर्थ है; किन्तु वह भोग देनेको प्रवृत हुए प्रारब्ध कर्मको हाथसे छुटे हुए बाणके समान, रोकनेमें असमर्थ है ।

शिष्य–हे गुरु ! अब यह सन्देह उत्पन्न होता है कि, जब ज्ञानसे संचित और क्रियमाण कर्म नाश हो जाते हैं, तब प्रारब्ध कर्मके नाश न होनेका क्या कारण है ? सो आप कृपाकर इस शंकाका समाधान कीजिये ।

गुरु–हे शिष्य ! ज्ञान, अज्ञान और संचित तथा क्रियमाण कर्मोंका विरोधी तो है; किन्तु प्रारब्ध कर्मका विरोधी नहीं है ! यह प्रत्यक्ष प्रमाणोंद्वारा सिद्ध होता है। और युक्ति विचारसेभी ऐसाही निश्चय होता है । सो प्रत्यक्ष युक्ति प्रमाणसे मैं तेरी शंकाको निवृत करता हूं; सो हे शिष्य ! तू सावधान चित्त होकर सुन !

हे शिष्य ! ज्ञानका उपदेश करनेवाला गुरु ज्ञानी है कि, अज्ञानी ? यदि गुरुको अज्ञानी माना जावे

तो वह जब स्वयम् अज्ञानी है तब दूसरेको ज्ञानका उपदेशही क्या करेगा? अर्थात् अज्ञानी गुरु ज्ञानका उपदेश करही नहीं सकता। यदि गुरु ज्ञानी है; तो ज्ञानी गुरुका उपदेश करना देहविना कैसा हो सकेगा? और देह प्रारब्ध कर्मका फल होनेसे प्रारब्ध कर्मकी निवृत्ति देहकी वर्तमानावस्थामें सम्भव नहीं है। इसलिये प्रारब्धकर्म सहितही उपदेष्ठा गुरुका शरीर है। इससे यह सिद्ध होता है कि, ज्ञान प्रारब्धकर्मका विरोधी नहीं है। यदि ज्ञानको प्रारब्धकर्मका विरोधी माना जावे तो ज्ञान होतेही प्रारब्धकर्मके नाश होनेसे गुरुके शरीरकाभी नाश होना चाहिये। और जब गुरुकी देहकाभी नाश होगया, तब उपदेश करनेवाले गुरुका आपही अभाव हुआ; तब ज्ञानोपदेष्ठा गुरुविना ज्ञान सम्प्रदायकाही लोप होगया। अब उपदेशकर्ता गुरुकी स्थिति माननाही असम्भव हुआ। इसप्रकारसे ज्ञानको प्रारब्धका विरोधी माननेसे यह बड़ी आपत्ति आवेगी। इसलिये ज्ञान

द्वारा प्रारब्धकर्मका नाश न माननाही अच्छा है। क्यों कि—

याज्ञवल्क्य, उद्दालक, वशिष्ठ, पराशर, वीतहव्य, वेदव्यास, शुकदेव आदि अद्वैत ज्ञाननिष्ठ ज्ञानी पुरुषोंको ज्ञानसम्प्रदाय प्रवर्तक रूपसे श्रुतिने बहुत स्थानोंमें वर्णन किया है। वैसेही जनक, भगीरथ, शिखरध्वजादि महान राजलोगभी अद्वैत ज्ञाननिष्ठासे जीवन्मुक्त हुए हैं, सोभी महाभारत, योगवासिष्ठ और रामायण आदि ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। यदि ज्ञानद्वारा प्रारब्धका नाश होता तो याज्ञवल्क्य आदि ऋषि और जनक आदि राजाओंको जीवन्मुक्त कहना असम्भव होता। क्योंकि, जो आत्माको नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, एक, अद्वैत, अकर्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्दरूप जानकरभी प्रारब्धकर्मके फलसे जीता है उसेही जीवन्मुक्त कहते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, ज्ञानसे प्रारब्धकर्म निवृत्त नहीं होता।

और तो और श्रीरामचन्द्र और युधिष्ठिर आदि समर्थ मर्यादा पुरुषोत्तमोंकोभी प्रारब्धकर्मका फल अवश्य भोगना पड़ा है, सो वाल्मीकीय रामायण और महाभारतमें प्रसिद्ध है।

श्लोक।

अवश्यंभाविभावाना प्रतिकारो भवेद्यदि। तदा दुःखैर्न लिप्येरन् नलरामयुधिष्ठिराः ॥ १ ॥

अर्थ—अवश्य होनेवाले प्रारब्धकर्मके मिटानेकी यदि कोई युक्ति होती तो राजा नल, (धर्मावतार) युधिष्ठिर, और (मर्यादा पुरुषोत्तम) श्रीरामचन्द्र इत्यादि समर्थ पुरुष राज्यसे भ्रष्ट होकर क्यों बन बन फिरकर अनन्त दुःख उठाते।

इसलिये ज्ञानी अथवा अज्ञानी, चाहे कोईभी क्यों नहो, देहके प्रारब्धको भोगे विना किसीका छुटकारा नहीं है। हां ज्ञान होनेपर ज्ञानीके संचित आदिक

कर्म नाश हो जाते हैं ! इसपर श्रुतिके अर्थ तुल्य प्रामाणिक पुरुषका वचन है।

श्लोक ।

प्रारब्धं भोगतो नश्येत् शेषं ज्ञानेन दह्यते। शारीरं त्वितरत् कर्म तद्द्वेषि-प्रियवादिनोः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रारब्धकर्म तो भोगनेसेही नष्ट होते हैं और शेष संचित कर्म ज्ञान होतेही नाशको प्राप्त होता है। और ज्ञानीके शरीर से जो क्रियमाण कर्म होते हैं, वे ज्ञानीसे प्रीति और द्वेष करनेवालोंको प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो ज्ञानीकी भक्ति, स्तुति, पूजा, सेवा, शुश्रूषा करता है वह ज्ञानीके पुण्यका भागी होता है और जो ज्ञानीकी निन्दा करता, उससे द्वेष रखता और उसको देखकर जलताहै वह ज्ञानीके पाप कर्मोंको ग्रहण करता है। इसप्रकार ज्ञानी संचित और क्रियमाण कर्मोंसे निवृत्त होकर शरीर

रहे प्रयन्त देहके प्रारब्धका द्रष्टा हुआ जीवनमुक्त होकर विचरता है। यही बात श्रुतिमेंभी कही है।

इसलिये प्रारब्धकर्मके फलरूप सुखदुःखादि कर्म देह भोगता है। हे शिष्य! तू जो उन भोग और भोक्ताका प्रकाशक अभोक्ता परब्रह्मरूप है। इसप्रकार जो पुरुष अनुभवसे निश्चय करके जानता है वही पुरुष जीवन्मुक्त हुआ परमानन्दको प्राप्त होता है।

इसलिये अपनेको देह माननेरूपी अज्ञानताको छोड़कर "मैं आत्मा ब्रह्म हूँ" ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अब आगेकी चौपाईमें देहात्मवादको पापरूप और आत्मबोधको पुण्यरूप वर्णन करते हैं।

चौपाई।

देहने हूं माने जे कोई।
महादोषी कहीए सोई॥

आत्मबुद्धि जेने भाई ।
महापुण्य जानिये ताई ॥ ३३ ॥

टीका—जो मनुष्य अपनेको देह मानता है। सो महापापी है । स्मृतिमें कहा है ।

"नानृतात्पातकं परं" ।

अर्थ—असत्य भाषणसे बढकर दूसरा कोई पाप नहीं है । अर्थात झूठ बोलना महा पाप है ।

इस न्यायसे जो देहकोही आत्मा कहते हैं वे असत्य बोलनेवाले पापी हैं क्योंकि, देह पंचभूतका कार्य है और आत्मा पंचभूतका कारण है। देह दृश्य, विकारी, अनित्य, जड, परिछिन्न, सावयव है और आत्मा द्रष्टा, अविकारी, नित्य, ज्ञानस्वरूप, परिपूर्ण और निर्वयव है। देह अशुचि, दुर्गंध, मल, मांस, मूत्र, रुधिर आदि विकारोंसे पूर्ण है। और आत्मा सर्वदा शुद्ध, निर्मल, आनन्दघन है। इसप्रकार देह और आत्माके लक्षण परस्पर भिन्न भिन्न

होनेके कारण आत्मा देहसे भिन्न है। यह सर्वके अनुभव सिद्ध है यह जानकरभी जो अपनेको देहरूपही जानता है उसको महापापी समझना चाहिये। अथवा जिसप्रकार वात, पित्त और कफके सम्मेलनको महादोष (त्रिदोष) कहते हैं अथवा सन्निपात। इस सन्निपातको प्राप्त पुरुष जिसप्रकार मृत्युको प्राप्त होता है; उसीप्रकार देहाभिमानी पुरुषभी महादोषी है, वहभी जन्ममरणसे कदापि निकल नहीं सकता; बार बार आवागमनको प्राप्त होता है।

भागवतमें भगवानने उद्धवजीसे कहा है कि, "हे उद्धव ! अहंता और ममतारूप बुद्धिको सन्निपात जानना चाहिये"। अर्थात सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणरूप तीनों गुणों तथा उनके कार्य्यमें अहंता ममता करनेको सन्निपात जानना चाहिये। और ऐसे सन्निपातवाले बारम्बार जन्ममरणको प्राप्त होते हैं।

ऐसोंका जन्ममृत्युरूप दुःख निवृत्त नहीं होता।

और जिस पुरुषको गुरुकी कृपासे सच्चिदानन्दरूप आत्माका बोध हुआ है वे महापुण्यको प्राप्त हुए हैं। "ब्रह्मविचारही महापुण्यका हेतु है" इस बातको आप्त पुरुषने सिद्धान्तमुक्तावलिमें इसप्रकार वर्णन किया है।

श्लोक।

स्नानं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः॥ संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥ १॥

अर्थ–ब्रह्मविचारमें जिस पुरुषका मन क्षणमात्रभी स्थिर होता है तो, उस पुरुषको गंगादि सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। उस पुरुषको समस्त पृथ्वी दान करनेका फल तथा सहस्रों

यज्ञ, सर्व देवोंकी पूजा, सर्व पित्रोंको तृप्त करनेका पुण्य प्राप्त होता है। ऐसे पुरुषके पुण्यसे उसके सर्व पितृदेव सद्गतिको प्राप्त होते हैं और वह पुरुष स्वयम् त्रिलोकीका पूज्य होता है ॥ १ ॥

क्षणमात्रके ब्रह्मविचारका फल जब ऐसा है तब जो पुरुष देहाध्यासको त्याग कर अपनेको ब्रह्म जानता है और बारम्बार "अहं ब्रह्मास्मि" के अभ्याससे जिसकी वृत्ति ब्रह्माकार हुई है वह महा पुण्यात्मा है इसमें कहनाही क्या है? इस उपरोक्त अर्थके लिये पुराणकाभी प्रमाण देते हैं।

श्लोक।

देहात्मबुद्धिजं पापं न तद्गोवधकोटिभिः। आत्माहं बुद्धिजं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥ १ ॥

अर्थ—अपनेको देह माननेसे इतने पाप होते हैं जो क्रोड़ो गोहत्याके पापसेभी बढ़कर हैं। श्रुतिमेंभी

कहा है कि, देहाभिमानीको सर्व पाप उत्पन्न होते हैं जिससे वह पापी और आत्महत्यारा होता है। और "मैं सच्चिदानन्द आत्मा हूं" इसप्रकारकी ब्रह्मबुद्धि जिसको प्राप्त होती है उसको ऐसा पुण्य प्राप्त होता हैं, जैसा पुण्य प्रथम प्राप्त हुआ नहीं है और आगे प्राप्त होनेवाला नहीं है ॥ १॥

इसप्रकारसे आत्मबुद्धिको महापुण्यरूप निरूपण करके अब सर्व साक्षिरूप आत्माको जानकर भेद-बुद्धिको त्याग करानेके लिये, भेदबुद्धिको बन्धनका कारण निरूपण करते हैं।

चौपाई।

जेने तूं कहेछे देव।
ते तूं चैतन्य स्वयमेव॥
बीजो देव माने जे कोई।
एज बन्धन तेने होई॥ ३४॥

टीका—हे शिष्य! जिसको तू चैतन्य स्वयं-

प्रकाश देव कहता है सो देव तू स्वयम् चैतन्यस्वरूप है। वह चैतन्यरूप स्वयंप्रकाश देव सर्व प्राणियोंमें एकही आत्मारूप है इसलिये अपनेकोही चैतन्य स्वयंप्रकाश देव जान। जो अज्ञानवश चैतन्यरूप आत्मदेवको भूलकर अपनेको देह मानकर चैतन्य-देवको अपनेसे भिन्न मानता है वह सदा बन्धनमें रहता है। श्रुतिमेंभी कहा है कि, "जो पुरुष ऐसा जानता है कि, "मैं भिन्न हूँ और देव मुझसे भिन्न है" और बुद्धिसेही वह अन्य देवकी उपासनाभी करता है; इसलिये वह देवोंके पशुतुल्य है"।

जिसप्रकार पशु गाडी खींचने, हल जोतने, बोझा उठाने आदि कामोंमें आता है उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्यरूप पशु यज्ञादिक करके देवताओंको भाग देकर उनका काम करके पशु बना रहता है।

दूसरी श्रुतिमेंभी कहा है कि,—"जो पुरुष अद्वैत ब्रह्ममें भेदबुद्धि करता है सो पुरुष बारम्बार मृत्युको प्राप्त होता है"—

इसलिये हे शिष्य! भेदबुद्धिको छोड़कर एक चैतन्यदेवको सर्वके मनका साक्षी गुरुशास्त्रके उपदेशसे निश्चय कर अभेद बुद्धिको प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

स्मृतिमेंभी गुरुशिष्यके सम्वादद्वारा सर्वके मनके साक्षीको एकही सिद्ध किया है।

श्लोक।

को देवो? यो मनःसाक्षीः मनों मे दृश्यते मया। तर्हि देवस्त्वमेवासि एको देव इति श्रुतेः ॥ १ ॥

अर्थ—किसी उत्तम अधिकारी मुमुक्षुने वेदवाक्यमें सुना कि, "देवको जाननेसे सर्व बन्धन छूट जाते हैं"। यह सुनकर वह मनमें विचारने लगा कि, "मैं देवको कैसे जानूं?"। "मुझे उस देवका अनुभव कौन करावे?।" ऐसा विचार करता हुआ किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाकर उसने प्रश्न किया कि, "को देवः अर्थात् देव कौन है?"

तब गुरुने उत्तर दिया कि, "यो मनःसाक्षी अर्थात् जो मनका साक्षी है" सोई देव है।

गुरुके वचनको सुनकर शिष्यने फिर विचार किया कि, मनको जाननेवाला कौन होगा ? इन्द्रादि देव मनके जाननेवाले होंगे कि, कोई दूसराही होगा ? इसप्रकारसे जब मनमें बहुत विचार करनेपरभी उसको कुछ निश्चय नहीं हुआ, तब वह किसी बुद्धिमान पुरुषके पास गया और उससे पूछने लगा कि, "मेरे मनका जाननेवाला कौन है ?" उसने उत्तर दिया कि, अपने मनका जाननेवाला तू स्वयम् है दूसरा कौन होगा ?

इस उत्तरको सुनकर उसे सन्तोष नहीं हुआ तब वह किसी दूसरे महात्माके पास जाकर पूछने लगा कि, "हे भगवन् ! मेरे मनका जाननेवाला कौन है ?" उस महात्मानेभी उसे वही उत्तर दिया जो पहले महात्माने दिया था अर्थात् "अपने मनका जाननेवाला तू स्वयम् है दूसरा कोई नहीं"। इसप्रकारसे

वह पुरुष बहुतोंके पास गया और सबोंसे वही प्रश्न करके वही एकही उत्तर पाता रहा; तब वह एकान्तमें बैठकर स्वयम् विचार करने लगा कि, उन लोगोंका कहना सत्य है या असत्य ? मैं मनका साक्षी हूँ या नहीं ?

फिर विचार करते करते उसने जाना कि, मनका धर्म संकल्प विकल्प करनेका है और सुख-दुःखभी मनही भोगता है और बहिर पदार्थोंमें गमनागमनभी यही करता है; सो इस मनके धर्मोंका जाननेवाला मैंही इसका साक्षी हूँ।

क्योंकि, जब कोई पुरुष किसीके साथ वार्तालाप करने लग जाता है तब यदि सुननेवाले पुरुषका मन किसी दूसरी ओर लगा हो तो वह एक बातभी नहीं सुनता है। और जब वक्ताको यह प्रतीत होता है कि, श्रोताने तो बात सुनीही नहीं क्योंकि उसका मन मेरी बातपर नहीं है। तब वक्ता श्रोतासे पुछता है कि, भाई मेरी बात तुमने सुनी ?

श्रोता उत्तर देता है मेरा मन दूसरी और गया था इसलिये कुछभी नहीं सुन सका। अब मन ठिकाने आया है कहो क्या कहते हौ? अब सब सुनूंगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि, "प्रथम मनके बाहर जाने और अब स्थानपर आने" को जाननेवालाही साक्षी है। इसलिये मनकी चञ्चलता तथा स्थिरता और जाग्रत स्वप्नमें मनके कार्य्य संकल्प विकल्प तथा विषय इत्यादि और सुषुप्ति अवस्थामें मनके विषयोंके अभाव होनेको जाननेवाला प्रकाशक मैंही हूं। इसलिये मनका साक्षी मैं हूं। इसप्रकार अनुभवसे जानकर शिष्य गुरुके पास जाकर कहता है कि, "मनो मे दृश्यते मया अर्थात् मेरा मन मुझीको देख पड़ता है अर्थात् मनका साक्षी तो मैंही हूं"। उसके वचनको सुनकर गुरुने कहा कि, "तर्हि देवस्त्वमेवाऽसि अर्थात् तब देव तूही है," अर्थात् प्रत्येक चैतन्य स्वयंप्रकाश देवरूप साक्षी आत्मा तूही है।

उपरोक्त "को देवो! यो मनःसाक्षी" स्मृतिके तीन

चरणोंमें यह सिद्ध किया कि, सबके मनका साक्षी आत्माही "देव" है। अब उसी स्मृतिके चतुर्थ चरण द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि, "सो देव एक है और सब भूत प्राणियोंमें है"। तहां श्वेताश्वतर उपनिषद्का प्रमाण देते हैं कि, "एको देव इति श्रुतेः" अर्थात् ब्रह्मासे आदि लेकर चींटी पर्यन्त सर्व भूतोंके विषे (स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप) एक (अद्वितीय) है। तथापि सद्विचाररहित अज्ञानी लोगोंको अज्ञानजन्य आवरणके कारण देहाभिमान द्वारा सो देव अपरोक्षरूपसे नहीं जाना जाता इसीलिये उसे गूढ कहते हैं।

वही देव सर्वमें एक समान व्यापक सर्वका अन्तरात्मा है और पुण्य पापरूप कर्मोंका फल प्रदाता तथा पृथ्वी आदि सर्व भूतोंका अधिष्ठान तथा सर्व भूतोंका साक्षी द्रष्टा चैतन्यरूप होनेपरभी वास्तवमें केवल निष्प्रपंच निर्विकल्परूप है। निर्गुण अर्थात् सत्वादि तथा ज्ञानादि गुणरहित सत्य, ज्ञान और आनन्दरूप है।

इसलिये हे शिष्य! "मन बुद्धिका जो साक्षी आत्मा है सोई देव है" ऐसा निश्चय करके अपनेसे भिन्न देवकी अस्तिकी भ्रान्ति छोड़दे। क्योंकि, श्रुतिमें कहा है कि, "द्वितीयाद्वै भयं भवति" अर्थात् जो द्वैत मानता है सो भयको प्राप्त होता है। भागवतमेंभी कहा है "भयं द्वितीयाऽभिनिवेशतः स्यात्" अर्थात् द्वैत (भेद) में आग्रह करनेसे जन्ममरण आदिरूप भय प्राप्त होता है। इसलिये सर्वथा भेदबुद्धिका त्यागनाही उचित है।

इसप्रकारसे स्वयंप्रकाशरूप चैतन्य देवका सर्वात्मपणा निरूपण किया; अब अमानित्वादि उत्तम साधनोंको निरूपण करके, पूर्व कहे हुए २९ वें दोहेमें सामवेदके महावाक्यके अखण्डार्थ (अभेदार्थ) की अखण्ड स्थितिके लिये समाधिके अभ्यासका निरूपण करते हैं।

क्योंकि, महावाक्यके अखण्डार्थको ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके उपदेशपूर्वक, हृदयमें धारण करके, मनन निदि-

ध्यासन द्वारा जिस पुरुषने अपनेको नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त, प्रत्यक्, एकरस, सच्चिदानन्द, ब्रह्मरूपः निर्विकल्प, निष्क्रिय आत्माका अनुभवपूर्वक साक्षात्कार किया है, वह पुरुष ज्ञानामृतसे जीवन्मुक्तः होकर कृतकृत्यतारूपी तृप्तिको प्राप्त हुआ है; यद्यपि उसको कुछभी कर्तव्य नहीं है तथापि जो पुरुष मुक्तिकी इच्छा करके श्रवणादिकमें प्रवृत्त हुआ है; किन्तु उसकी वृत्ति बाह्य विषयोंके संकल्पसे चञ्चल होनेके कारण अपरोक्ष अद्वितीय आत्माके अनुसन्धानमें दृढ निष्ठावान नहीं होती है, ऐसे मुमुक्षुओंके बाह्य विषयोंके संकल्पोंकी निवृत्तिपूर्वक, मनकी वृत्तिकी स्थिरताके लिये तथा अद्वितीय आत्माके अपरोक्ष दृढ बोधपूर्वक जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्तिकी प्राप्तिके लिये, समाधिका अभ्यास अवश्य कर्तव्य है। इसीलिये आगेके ३५ वें दोहामें ध्यानके अभ्यासकी रीति निरूपण करते हैं।

दोहा ।

प्रथम वृत्तित्याग करी, बीजी उठवा न दइ ए। वचमां निर्विकल्प दशानो, अभ्यास करता रहिए॥ ३५॥

टीका—प्रथम वृत्ति अर्थात् ज्ञान होनेके पहलेकी देहाकार वृत्ति कि, मैं देह हूं; कर्ता, भोक्ता तथा सुखी दुःखी हूँ इत्यादि और शब्द, स्पर्श, रूप, रसादिकमें प्रवृत्तिरूप वृत्तिको त्याग करके, दूसरी वृत्ति देहादिकमें अहंता ममता अथवा शब्दादिक विषयोंको उत्पन्नही न होने देकर, दोनोंके मध्यकी निर्विकल्प अवस्थामें स्थित होना चाहिये। अर्थात् एक वृत्ति नष्ट होगयी है, और दूसरी अबही उठने नहीं पायी है, दोनोंके मध्यमें कल्पनारहित जो अपना स्वप्रकाश स्वरूप है उसीमें स्थितिरूप दशाका निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् प्रथम सविकल्प समाधिका अभ्यास करके पश्चात् निर्विकल्प समाधिका अभ्यास करे।

शिष्य–हे गुरु ! सविकल्प तथा निर्विकल्प समाधिमें क्या भेद है ? सो कृपाकर कहिये ।

गुरु–हे शिष्य ! समाधिका दो भेद है । १ सविकल्प २ निर्विकल्प । इसमेंभी सविकल्पका दो भेद है । १ दृश्यानुविद्धि, २ शब्दानुविद्धि ।

शिष्य–हे गुरु ! दृश्यानुविद्धि समाधि किसको कहते हैं ? ।

गुरु–हे शिष्य ! अन्तःकरणकी सात्विक आदि वृत्तिमें काम, संकल्प, चिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य्य, अधैर्य्य, लज्जा, भय आदि जो दृश्य है । अपनेको इन सब वृत्तियोंका साक्षी शुद्ध चैतन्यरूप जानते हुए सदा ऐसेही अनुसन्धानपूर्वक आत्माके अनुभव करनेको दृश्यानुविद्धि सविकल्प समाधि कहते हैं ।

शिष्य–हे गुरु ! अब शब्दानुविद्धि सविकल्प समाधिका वर्णन कीजिये ?

गुरु—हे शिष्य!

"मैं असंग हूं अर्थात् देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदिमें रहते हुएभी मेरा इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है—

जैसे—आकाश, घृत, तैल, चन्दन, कीच आदिमें रहते हुए भी उनमें लेपायमान नहीं है।"

और मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ अर्थात् जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें मैं हूँ इसलिये सत्; जाग्रतादि तीनों अवस्थाओंको जानता हूँ इसलिये चित्त; और परम प्रेमका आस्पद हूँ इसलिये आनन्द।

मैं स्वयं स्वाभाविक प्रकाशरूप हूँ; मैं दूसरोंको प्रकाशता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं प्रकाशता। इसलिये स्वप्रकाश हूँ।

मैं द्वैतरहित हूँ अर्थात् मेरे स्वरूपमें द्वैत प्रपंचका लेशभी नहीं है क्योंकि, सर्व द्वैत प्रपंच कल्पित है।

इसप्रकार मैं असंग, सत्, चैतन्य, आनन्द और स्वयंप्रकाशरूप हूं। ऐसा कहते हुए अपनेको

उपयुक्त विशेषणोंवाला जाननेका नाम शब्दानुविद्धि सविकल्प समाधि है।

इसप्रकारसे प्रथम दृश्यानुविद्धि और शब्दानुविद्धिरूप दो प्रकारके सविकल्प समाधिका अभ्यास करते करते उसके दृढ होनेके पश्चात् निर्विकल्प समाधिका अभ्यास करना।

शिष्य—हे गुरु! अब निर्विकल्प समाधिका स्वरूप वर्णन करनेकी कृपा कीजिये?

गुरु—हे शिष्य!

दृश्यानुविद्धि और शब्दानुविद्धि समाधियोंका अभ्यास करते करते, अन्तःकरणमें, आनन्दरूप आत्माके ज्ञानानन्दके अनुभवके आवेशसे, काम, संकल्प आदि दृश्य वृत्तियोंका अनुसन्धान छोड़कर, और "मैं असंग आत्मा हूं" इत्यादि शब्दोंकोभी छोड़कर संकल्परहित तूष्णीरूप शान्त स्थितिको पहुंचनेका नाम निर्विकल्प समाधि है।

जिसप्रकार वायुविना दीपक निश्चल रहता है उसीप्रकार निर्विकल्प समाधिवाले पुरुषका चित्त निश्चल रहता है। अर्थात् निर्विकल्प समाधिमें कुछभी द्वैत प्रपंच नहीं भासता इससे निर्विकल्प चैतन्यरूप आत्माका स्पष्ट अनुभव होता है ॥ ३५ ॥

इस निर्विकल्प चैतन्यसुखके अनुभवकी रीति गुरु शंकराचार्य्यनेभी लघुवाक्यवृत्तिमें इसप्रकार वर्णन किया है।

श्लोक।

नष्टे पूर्वविकल्पे तु यावदन्यस्य नोदयः। निर्विकल्पकचैतन्यं स्पष्टं तावद्विभासते ॥ १ ॥

अर्थ—मनमें प्रथमवाले नानाप्रकारके विकल्पोंकी निवृत्ति होकर, जबतक दूसरे प्रकारकी वृत्तिका उदय न होवे, तबतक निर्विकल्प एक स्वयंप्रकाश चैतन्य स्पष्ट भासता है। अर्थात् जिससमय मनमें

किसीप्रकारकीभी वृत्तिका आविर्भाव नहीं होता है, उससमय दूसरेके अभावसे केवल स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप निर्विकल्प आत्माका स्पष्ट अनुभव होता है। उससमय वृत्तिभी निर्विकल्प सुखाकार हो जाती है। उससमय किसीप्रकारकाभी विक्षेप प्रतीत नहीं होता।

इसलिये इस निर्विकल्प वृत्तिको प्राप्त करनेका अभ्यास करना चाहिये।

इससे यहभी जाना जाता है कि, जितना विकल्प है सो सब अन्तःकरणमेंही है आत्मा स्वतः-स्वभावसेही निर्विकल्प है। वह अन्तःकरणके विकल्पसे कुछ सविकल्प बनता नहीं है। किन्तु जिनको आत्मा सविकल्प भासता है उनको इस भासका कारण सद्गुरुके उपदेशपूर्वक वेदान्तशास्त्रके अभ्यास तथा निर्विकल्प समाधिके अभावसे निर्विकल्प आत्माका बोध न होना है अर्थात् जिसने गुरुमुखसे वेदान्तशास्त्रके अभ्यासद्वारा निर्विकल्प आत्माका ज्ञान सम्पादन नहीं किया है और

निर्विकल्प समाधिद्वारा निर्विकल्प आत्माका अनुभव नहीं किया है उसीको आत्मा सविकल्प भासता है। सो भ्रम है।

इसलिये इस भ्रमकी निवृत्ति करनेके लिये ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी शरणमें जाकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण मनन करके निदिध्यासनसे "मैं निर्विकल्प आत्मा हूं" ऐसा दृढ अनुभव प्राप्त करके समाधिका अभ्यास करना योग्य है।

अब उत्तम अधिकारीको आत्माके साक्षात्कार होनेके लिये श्रवण मनन आदि मुख्य साधनोंका वर्णन, याज्ञवल्क्य मुनिने अपने स्त्री मैत्रेयीसे किया है सो आगेके ३६ वें दोहेमें गुरु निरूपण करते हैं।

दोहा।

श्रवण मनन निदिध्यास करी, करीए साक्षात्कार। सच्चिदानन्दपर ब्रह्म हूँ, कहे छे वेद पुकार ॥

टीका—प्रथम षट्लिङ्गोसहित वेदान्तशास्त्रका श्रवण करना। अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यके निश्चय करनेवाले छःप्रकारके लिङ्गोंद्वारा वेदान्तवाक्योंके अद्वितीय ब्रह्मबोधके तात्पर्यको निश्चय करनेका नाम श्रवण है।

शिष्य—हे गुरु! छःप्रकारके लिंग कौन कौन हैं?

गुरु—हे शिष्य! १ उपक्रमोपसंहार, २ अभ्यास, ३ अपूर्वता, ४ फल, ५ अर्थवाद, और ६ उपपत्ति यही छः प्रकारके लिङ्ग (लक्षण) हैं।

शिष्य—हे गुरु उपक्रमोपसंहार किसे कहते हैं?

गुरु—हे शिष्य! प्रकरणद्वारे प्रतिपाद्य अर्थको प्रकरणके आदि अन्तमें प्रतिपादन करनेको उपक्रमोपसंहार कहते हैं। जैसे—

छांदोग्य उपनिषद्के छट्टे अध्यायमें प्रकरणद्वारा प्रतिपाद्य एक, अद्वितीय, स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदसेरहित ब्रह्मवस्तुका निरूपण किया

है। उसको प्रकरणके आदिमें निरूपण करके अन्तमें "सर्व जगत आत्माही रूप है" कहकर उपसंहार किया है।

शिष्य—हे गुरु! अभ्यास किसको कहते हैं सो कहिये?

गुरु—हे शिष्य! प्रकरणद्वारा प्रतिपाद्य अद्वितीय ब्रह्मवस्तुका प्रकरणमें वारम्वार निरूपण करनेको अभ्यास कहते हैं। जैसे—

छान्दोग्य उपनिषदमें उद्दालक मुनिने, अपने पुत्र श्वेतकेतुको वारम्वार उपदेश किया है कि—"तत् त्वं असि" अर्थात् सो ब्रह्म तूही प्रत्यगात्मा है। इसीको अभ्यास कहते हैं।

शिष्य—हे गुरु! अपूर्वताका क्या स्वरूप है?

गुरु—हे शिष्य! प्रकरणद्वारा प्रतिपाद्य अद्वितीय आत्मवस्तुका दूसरे प्रमाणोंद्वारा प्रतिपादन न होनेका नाम अपूर्वता है। जैसे—उपनिषदमें

श्रुतिविना दूसरे प्रमाणोंद्वारा ब्रह्मको अप्रतिपाद्य कहा है; अथवा ब्रह्मस्वप्रकाशरूप है इसलिये उसको जाननेके लिये दूसरे किसीभी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं हैं। इससे यही ब्रह्मकी अपूर्वता है।

शिष्य—फल किसे कहते हैं ?

गुरु—हे शिष्य ! प्रकरणद्वारा प्रतिपादित आत्मज्ञान अथवा आत्मज्ञानके साधनरूप श्रवणादिकके अनुष्ठानके श्रुतिद्वारा वर्णनके साथ वहांका वहांही उनके प्रयोजनके वर्णनको फल कहते हैं। जैसे—"ब्रह्मनिष्ठ गुरुके उपदेश द्वारा पुरुष आत्माको जानता है" "ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मरूपही है" "आत्मतत्त्वको जाननेवाला शोकको तर जाता है" इत्यादि वाक्योंमें साधन और प्रयोजन एकसाथही वर्णन किया है। जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुका उपदेश तो साधन है, और आत्माको जानना प्रयोजन है अर्थात् साधन और प्रयोजनके एकसाथही वर्णनका नाम फल है

शिष्य—हे गुरु! अर्थवाद किसे कहते हैं?

गुरु—हे शिष्य! प्रकरणद्वारा प्रतिपादित अद्वितीय ब्रह्मरूपकी स्थान स्थानपर प्रशंसा करनेको अर्थवाद कहते हैं। जैसे।

छान्दोग्य उपनिषद्में कहा है कि, समग्र प्रपंचके अधिष्ठानरूप ब्रह्मकोही श्रवण करनेसे अश्रुत प्रपंचकाभी श्रवण हो जाता है। उसीप्रकार ब्रह्मके जाननेसेही अज्ञातप्रपंचभी जाननेमें आता है। इत्यादि प्रशंसाको अर्थवाद कहते हैं।

शिष्य—हे गुरु! अब उपपत्तिका स्वरूप वर्णन कीजिये?।

गुरु—हे शिष्य! प्रकरणद्वारा प्रतिपादित अद्वितीय आत्मवस्तुको दृष्टान्तों द्वारा प्रतिपादन करनेका नाम उपपत्ति है। जैसे—

छांदोग्य उपनिषद्में कहा है कि, एक मिट्टीकोही जाननेसे मिट्टीके विकार घट आदि सर्व मृत्ति-

कापात्र जाननेमें आते हैं । और घटादिक नामरूपकी मिथ्यापना सिद्ध होती है । जैसे सुवर्णके जाननेसेही उसके विकाररूप सर्व अलंकारका बोध होता है । कनक कुंडलादि अलंकार वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है किन्तु सर्व सुवर्णही है । इत्यादि युक्ति दृष्टान्तों द्वारा नामरूपात्मक जगतके मिथ्यात्व निरूपण पूर्वक अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादनको उपपत्ति कहते हैं ।

इसप्रकार उपक्रमोपसंहारादिक छः लिङ्गोंसहित सर्व वेदान्त वाक्योंका अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्य्य समझने रूप श्रवण करनेके पश्चात मनन करना चाहिये ।

शिष्य—हे गुरु! मनन किसे कहते हैं ?

गुरु—हे शिष्य! श्रवण किये हुए अद्वितीय ब्रह्म वस्तुको असंभावना दोषकी निवृत्तिके लिये, वेदान्तानुसार युक्तियों द्वारा वारंवार मनमें चिन्तन करनेको मनन कहते हैं । इस मननके सिद्ध होने पश्चात् निदिध्यासन करना ।

शिष्य—हे गुरु! निदिध्यासनका स्वरूपभी समझाकर कहिये ?।

गुरु—हे शिष्य! सदा ऐसा विचार करना कि,—मैं देह नहीं हूं, स्थूल, कृश, ऱ्हस्व, दीर्घभी मैं नहीं; मैं वर्णाश्रमादिरूप भी नहीं हूं; इसीप्रकार विजातीय प्रत्ययके तिरस्कार पूर्वक-अपनेको ऐसा जानना कि, मैं प्रत्यगात्मा, द्रष्टा, साक्षी, सच्चिदानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अजन्मा, अजर, अमर, अक्रिय, असंग, अद्वितीय, ब्रह्मरूप हूँ।

इसप्रकारसे विजातीय प्रवाहके तिरस्कार पूर्वक सजातीय प्रवाहके चिन्तनको निदिध्यासन कहते हैं।

इसीप्रकार श्रवणादिकसे क्रमपूर्वक सर्व साधनोंका अभ्यास करते हुए निदिध्यासनद्वारा आत्माका निःसन्देह अपरोक्ष अनुभवरूप "साक्षात्कार" को सम्पादन करना चाहिये।

इसप्रकारसे अर्द्ध दोहामें श्रवण मनन निदिध्यासनद्वारा आत्माका साक्षात्कार करना बतलाया

और शेष आधे दोहेसे साक्षात्कारका स्वरूप वर्णन करते हैं।

शिष्य—हे गुरु! साक्षात्कार किसे कहते है?

गुरु—हे शिष्य! "अहं आदि अन्तःकरणकी वृत्तियोंका प्रकाशक सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं हूं" ऐसे दृढ अनुभवका नामही साक्षात्कार है। यह बात वेद पुकारकर कह रहा है॥ ३६॥

पूर्वोक्त वर्णन किये हुए श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप आत्मसाक्षात्कारके तीन साधनोंका वर्णन किया। सो जबतक शब्दादि विषयोंमें चित्तकी वृत्ति आसक्त है तबतक उन श्रवणादि साधनोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये उन विषयोंको विष समान जानकर उनका त्याग करके, शमदमादि साधनको धारणकर ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी शरणमें प्राप्त होकर गुरुमुखद्वाराही श्रवण मनन आदि करके आत्मसाक्षात्कार सम्पादन करना चाहिये। इसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस हेतु श्रवणादि साधनोंद्वारा

ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिके लिये सदाकाल सत्य पुरुषोंका संग करना आगेके दोहामें निरूपण करते हैं।

विषय विषवत् त्याग करी, करीए साधुसंग। पोते सच्चिदानन्द सदा, जेमनो तेम अभंग ॥ ३७ ॥

टीका—शब्द, स्पर्श आदि निषिद्ध विषयोंका विषके समान त्याग करके; ज्ञान, वैराग्य, दया, संतोष, अकाम, अक्रोध, क्षमा, सदाचार आदि सल्लक्षण सम्पन्न, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुका संग करना। ऐसे सत्पुरुषके संगसे क्षमा, दया, सन्तोषादि साधन सहजमेंही प्राप्त हो जाते हैं। जिससे श्रवण मनन आदि साधन उत्तम रीतिसे सम्पादन होकर आत्मसाक्षात्कार द्वारा मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये नित्य सज्जनोंका संग करके अपना कल्याण सम्पादन करना चाहिये।

मुनि अष्टावक्रनेभी जनक राजाप्रति विषयोंके त्यागकोही मोक्षका साधन वर्णन किया है।

श्लोक ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात, विषयान् विषवत्त्यज । क्षमार्जवदयातोषसत्यं, पीयूषवद्भज ॥ १ ॥

अर्थ—हे जनक ! यदि तुझे मुक्तिकी इच्छा हो तो पंच विषयोंको विष समान जानकर त्याग दे और क्षमा, दया, आर्जव, (सरलता) संतोष और सत्यताका अमृतके समान सेवन कर ॥ १ ॥

दोहाके पूर्वार्द्धमें यह निरूपण किया कि, विषयोंको त्याग कर साधु महात्माका संग करना। अब दोहाके उत्तरार्द्धमें सत्संगके फलरूप आत्मस्वरूपका निरूपण करते हैं।

"पोते सच्चिदानन्द सदा इति"

स्वयं, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदिका प्रकाशक प्रत्यगात्मा, सदा जाग्रदादि तीनों अवस्था

---

१ दोहा । मुक्ति तात ! जो चाहिये, तज विषवत् विषजान । क्षमा दयार्जव तोष सत, अमृतजूँ भजमान ॥ १ ॥

तथा भूत, भविष्यतादि तीनों कालोंमें सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप है। वही प्रत्यगात्मा मन वाणीका अगोचर अप्रमेय (प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका अविषय) स्वतः-सिद्ध, स्वयंप्रकाश, जैसाका तैसा, अखण्ड रूप है।

"पोते सच्चिदानन्द सदा" कहनेसे इसका भावार्थ ऐसा निकलता है कि, सच्चिदानन्दरूप आत्मा सर्व मनुष्योंका स्वात्मरूप नित्य प्राप्त है। किन्तु अविद्याके प्रतापसे अप्राप्तके समान भासता है। जिसकी प्राप्तिके लिये कितने जिज्ञासु जप, तप, तीर्थ, व्रत, आदि अनेक साधनोंका अनुष्ठान करते हैं किन्तु उनको बहारसे कुछ प्राप्त नहीं होता। किन्तु जब कोई अत्यन्त दयालु ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु, जिसको परमात्माका प्रत्यगात्मा रूपसे उपदेश करता है। तब, विद्याद्वारा अविद्याकी निवृत्ति होकर वही प्राप्तिके समान भासता है। परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि, पहले परमात्माकी प्राप्ति नहीं थी अब हुई है। वह तो नित्य प्राप्त है। सद्गुरुके उपदेश

द्वारा नित्य प्राप्तिकीही प्राप्ति होती है । जैसे कंठकी माला कंठमेंही होती है किन्तु भूलसे अप्राप्तके समान भासती है और उसको ढूंढनेके लिये बाहर अनेक प्रयत्नभी करता है तौभी वह बाहर नहीं मिलती है। किन्तु जब कोई जाननेवाला पुरुष बतलाता है कि, तेरी माला तेरे कंठमेंही है तब वह माला प्राप्त होनेके समान भासता है। किन्तु ऐसा. नहीं है क्योंकि, माला तो उसके कण्ठमेंही थी केवल भूलसे वह उसको खोया हुआ समझता था।

इसीप्रकार सच्चिदानन्द आत्मा सदा प्राप्तही है। और "जेमनो तेम अभंग" का आशय है कि,—प्रत्यगात्मा स्वभावसेही परमात्मारूप सदा मुक्त है। ऐसा नहीं कि, प्रथम जीवरूप था अब परमात्मारूप हुआ है। प्रथम बन्धवान है और पीछे मुक्त होता है।

जिसप्रकार सूर्य्यमें रात और दिन दोनोही नहीं है । उसीप्रकार निरंतर, अचिंत्य, चैतन्यघन,

परिपूर्ण, प्रत्यगात्मामें यथार्थमें बंध और मोक्ष दोनों ही नहीं है। श्रुति कहती है "ब्रह्मरूपही ब्रह्मको प्राप्त होता है"। "मुक्तही मुक्त होता है"।

यदि कहो कि, प्रथम जीवरूप है पश्चात् कर्मोपासनादि साधनद्वारा परमात्मारूप बनता है तो ऐसा कहना योग्य नहीं है क्योंकि, यदि यह प्रथमसे परमात्मा नहीं है और अब हुआ है तो फिर इसका परमात्मापना मिटभी जायगा; सदा नहीं रह सकेगा। जिसप्रकार तांबाको किसी औषधिके संयोगसे पीलाकरके कोई सोना कहने लग जाय तो वह तांबा तबही तक सोना रहता है जब उस औषधिका प्रभाव उसपर रहता है जब औषधिका असर उसपरसे उतर जाता है तब फिर तांबाका तांबा हो जाता है। इसलिये प्रत्यगात्माको नवीन बनावटी परमात्मा न जानकर स्वभावसेही परमात्मारूप जानना चाहिये। कर्म उपासना करके यह

परमात्मा बना है ऐसा नहीं किन्तु स्वभावसेही ज्योंका त्यों यह ब्रह्मही है ।

ऐसे स्वभावसिद्ध स्वात्मारूप स्वयंसिद्ध ब्रह्मरूप प्रत्यगात्माका बोध ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके संगसे प्राप्त होता है इसलिये सदा सत्संग करते रहना चाहिये ।

सत्संगसे संसार बन्धनकी निवृत्तिपूर्वक मोक्षकी प्राप्तिको श्रीज्ञानगीतामें इसप्रकार कहा है । श्लोक ।

सत्संगेन परं प्राप्य दुस्तरं तरतेऽचिरात् । तस्मादतिप्रयत्नेन सत्संगं सततं कुरु ॥ १ ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मचर्याश्रमस्थ ब्रह्मविद्वरिष्ठाऽखण्डानन्दरूप श्रीरामगुरुकृत गुर्जर भाषायां पंचीकरणं समाप्तं ।

अर्थ—सत्संग अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके समागमसे परं प्राप्य कहिये सच्चिदानन्द, परिपूर्ण नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तरूप परमात्माको प्राप्त होकर समुद्रके समान तरनेमें दुस्तर संसारको शीघ्रही तर जाता है ।

शिष्य—हे गुरु ! जब संसारको आप समुद्रके समान दुस्तर बतलाते हो तो समुद्रकी उपमावाले ससारमेंभी मगर, मच्छ आदि क्या है ? सो कृपा करके कहिये।

गुरु—हे शिष्य ! समुद्रके भौंरके समान संसारमें स्त्री पुत्रादिकका मोहरूप भँवर है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकाररूपी मगर मच्छ हैं। क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक, आदि उर्मियां तरङ्ग हैं। अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूप वडवानल है। निरन्तर दुर्वासनारूपी सिवाल है। और अनेक विषयरूपी जल इसमें भरा हुआ है। ऐसे दुस्तर संसार समुद्रको सत्संगद्वारा आत्मबोधकी प्राप्तिसे पुरुष शीघ्रही तर जाता है। इसमें तनिकभी विलम्ब नहीं होता। जिसप्रकार जहाजसे पुरुष समुद्र पार हो जाता है उसीप्रकार।

इसलिये स्ववर्णाश्रमादिक धर्मके अनुष्ठानपूर्वक, यज्ञ, दान, तप, जप आदि साधनोंसे अन्तःकरणको

शुद्ध करके, विवेक आदि साधन सम्पन्न हो, सावधान चित्तसे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी शरणमें जाकर सदा सत्संग करना चाहिये।

सत्संगके लिये भोजनादि क्रियाकीभी परवा न रखना चाहिये अर्थात् सत्संगके प्रवाहमें बैठे हुए यदि भोजन करनेका समयभी हो जावे तबभी उसे मनसे भुलाकर सत्संगमें लगा रहना चाहिये।

सदाकाल सद्विचार करनेकी शास्त्रकी इसप्रकार आज्ञा है। श्लोक।

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया। दद्यान्नावसरं किंचित् कामादीनां मनागपि॥ १॥

अर्थ—जागनेसे सोनेतक और विवेक होने पश्चातभी देहपात पर्यन्त, श्रद्धाभक्तिपूर्वक वेदान्तशास्त्रके विचारद्वाराही कालविताना तथा मनमें कामक्रोधादिकको तनिकभी स्थान नहीं देना।

तात्पर्य यह कि, सदा वेदान्तका विचार करते रहनेसे मनमें कामक्रोधादिकका प्रवेश नहीं होता ॥ १ ॥

जिसप्रकार कोई पुरुष अपने घरमें बेकाम बैठा होवे। उसीसमय कोई दुर्गुणी मनुष्य बाहरसे आवे उसको वह देखे और उसका आदरसत्कार करे तो वह दुर्गुणी मनुष्य नित्य उसके पास आवेगा और इधर उधरकी बात करके वह दुर्गुणी उस घरवाले-कोभी अपने समानही बना लेगा। और यदि वह मनुष्य उस दुर्गुणीका आदरसत्कार न करे वरण उसे आता देख, उसकी ओर दृष्टिभी न करे और कोई पुस्तक लेकर बांचने लगे तो वह दुर्गुणी अपनी उपेक्षा होती देखकर स्वयं उठकर चला जावेगा। इसीप्रकार दो चार वार अनादर होनेसे वह फिर आनाही बन्द कर देगा।

इसीप्रकारसे वेदान्तविचार विना बेकाम बैठने-वाले पुरुषोंके पास कामक्रोधादिका आगमन होता है और यदि उन्हें आदर मिल जाता है अर्थात्

पुरुष उन्हींके अनुकूल संकल्पादिमें लग जाता है तो वे (कामक्रोधादि) शीघ्र पुरुषको परमार्थसे भ्रष्ट कर देते हैं। इसलिये उचित है कि, सदा वेदान्त विचार करता रहे जिससे प्रथम तो कामक्रोधादिक निकट फटकनेही नहीं पाते, यदि आतेभी हैं तो उनकी और वृत्ति न लगनेरूप तिरस्कारको पाकर शीघ्रही लोप हो जाते हैं।

इसलिये सदा वेदान्तशास्त्रका विचार करते रहकर कामादिकोंके आनेका अवसरही नहीं देना चाहिये। इसप्रकार वेदान्तविचाररूप सत्संग और सत्पुरुषोंके संगसे अनेक जन्मोंके पाप और अध्यात्मादिक अनेक प्रकारके पाप तथा दीनतादि सर्व दुःखद औगुणोंकी निवृत्ति होजाती है। इसपर सत्पुरुषका वाक्य है। श्लोक।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा। पापं तापं च दैन्यं च हरेत् साधुसमागमः ॥ १ ॥

अर्थ—गंगामें स्नान करनेसे पापका नाश होता है; चन्द्रमा गर्मीको मिटाता है और कल्पतरु दीनताको हरता है; किन्तु साधुका समागम सर्व पाप, अन्तर बाहरके समग्र ताप, तथा दीनता, तीनोंको अकेलाही नाश करता है। इसलिये सत्संग, गंगा, चन्द्रमा और कल्पतरु सबहीसे श्रेष्ठ है। इसलिये शरीरपात पर्यन्त सदा सत्संग करते रहना चाहिये।

शिष्य—हे गुरु। जबतक आत्मज्ञान नहीं हुआ है तब तक तो सत्संग करनाही चाहिये किन्तु ज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् जबतक देह रहे तबतक सत्संग करनेकी क्या आवश्यकता है ?।

गुरु—हे शिष्य ! यद्यपि शास्त्रश्रवणसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है तथापि शरीर रहते हुए देह व्यवहारसे वृत्ति बहिरकी ओर जाती है। यदि सत्संग और शास्त्र विचारद्वारा वृत्ति रोकी न जावे तो प्रपंचमें अहंममाऽध्यासकी विपरीतबुद्धि होती

है। इसलिये सदा सत्संग करनेकी आवश्यकता है। यहांतक कि, जिनको आत्माका दृढ निःसन्देह अपरोक्ष बोध हुआ है यद्यपि उनको कुछ कर्तव्य नहीं है तथापि वेदान्तशास्त्रकी आज्ञा है कि, वेदान्त, गुरु तथा ईश्वरका सदा सेवन करना चाहिये।

इस विषयमें आप्त पुरुषका वाक्य है—

यावदायुस्त्रयो वंद्या वेदांतो गुरुरीश्वरः। आदौ ज्ञानप्रसिद्धयर्थं कृतघ्नत्वापनुत्तये॥ १॥

अर्थ—जबतक शरीरकी आयु है तबतक वेदान्तशास्त्र और उसके उपदेष्टा गुरु तथा ईश्वर इन तीनोंकी वन्दना करना योग्य है। क्योंकि, ज्ञान होनेके प्रथम तो ज्ञानप्राप्तिके लिये वेदान्तशास्त्रका श्रवण, गुरुसेवा और ईश्वरभक्ति कर्तव्य है। और ज्ञान होजानेके पश्चात् कृतघ्नतारूप पापकी निवृत्तिके लिये इनका सेवन उचित है क्योंकि, जिन वेदान्त,

गुरु और ईश्वरकी कृपासे ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके उपकारको भूलनेसेही कृतघ्नताकी प्राप्ति होगी। इस हेतु कृतघ्नतारूपी महापापसे बचनेके लिये ज्ञान होजानेपरभी निरन्तर वेदान्त, गुरु और ईश्वरकी सेवा करते रहना चाहिये। अर्थात् परिपूर्ण, अखण्ड एक रस परमात्माके ज्ञानद्वारा दुस्तर संसारसागरसे तरने और कृतघ्नता दोषकी निवृत्तिके लिये, ईश्वर और गुरुमें भक्तिपूर्वक, देहपातपर्यन्त वेदान्तशास्त्रका विचार करते हुए काल व्यतीत करना चाहिये।

गीतिवृत्त।

निर्जरवागज्ञानांसुखबोधार्थं कृतं मुमुक्षूणाम्। यैरिव पंचिकरणं नरवाण्या तान् गुरून्सदा वंदे ॥ १ ॥

अर्थ—जिसको संस्कृत भाषाका ज्ञान नहीं है किन्तु संसारबन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा है; ऐसे जिज्ञासुओंको अनायास सच्चिदानन्दरूप आत्माके

बोध होनेके लिये जिस श्रीरामगुरुने यह पंचीकरण मनुष्यवाणीमें बनाया उस श्रीरामगुरुको मैं सदा बन्दन करता हूँ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमदखण्डानन्द
सरस्वती श्रीरामगुरुशिष्य जयकृष्णविदुषा विरचित
पंचीकरण सटीककी कबीरपंथी भारत
पथिकस्वामि श्रीयुगलानन्दजीकृत
हिन्दी भाषान्तर समाप्त ।

वसंततिलकावृत्त ।

इस ग्रन्थके मननसे निजबोध पावे
मायाविषाद सब बन्ध अनर्थ जावे ॥
ऐसा अनुग्रह करो गुरु राम स्वामी ।
यह चाहना करूँ निवेदन शीश नामी ॥१॥

इति ।

5.9.16.

बोधसार प्रकाश

सरल भाषानुवाद सहित

वेदान्त का अद्वितीय और परम माननीय ग्रन्थ

कविवर मुक्तापति जी कृत

इसकी वाक्यरचना बड़ी अद्भुत, रसीली और बहुत ही सीधी है। वेदान्त-विषयक ग्रन्थों में यह उत्कृष्ट का ग्रन्थ माना गया है। साधु सम्प्रदाय में इसका विशेष अध्ययन होता है। इस ग्रन्थ की रचना बड़ी योग्यता-पूर्ण है। अब इस पर बड़ी सुन्दर, सरल और सर्वप्रिय लोगों के लिए विशेष उपयोगी स्वामी सच्चिदानन्द जी कृत हिन्दी टीका छप गई है। इसके संशोधनादि का भार वेदान्तशास्त्र के अगाध [illegible] पं० नृसिंहदेव जी शास्त्री के सुपुर्द किया था। उन्होंने इस ग्रन्थ के विषय [illegible] अत्यन्त उपयोगी 'श्रीभाष्यवती' नामक टिप्पणी का निर्माण [illegible] से इसका मार्जन किया है, जो सोने में सुगन्ध के समान है। प्राचीन सिद्धान्तों का युक्तियुक्त समर्थन किया गया है। कपड़े की सुन्दरी जिल्द मूल्य ५) पाँच रुपया।

नियमानुसार कमीशन भी दिया जाता है। डाकव्यय अलग।

प्राप्तिस्थान

मेहरचन्द लछमणदास

संस्कृत हिन्दी पुस्तकालय

सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर